बिहार समाचार

वर्ष : 64, अंक : 01–02
जनवरी–फरवरी, 2015
(महोत्सव विशेषांक)

प्रधान सम्पादक
प्रत्यय अमृत

प्रकाशक
निदेशक,
सूचना एवं जन-सम्पर्क विभाग
बिहार

सम्पादक
डॉ. रामबदन बरुआ

सुरक्षित : सूचना एवं जन-सम्पर्क विभाग

सम्पादकीय सम्पर्क
सूचना एवं जन-सम्पर्क विभाग
सूचना भवन, बेली रोड
पटना–800 015
फोन : 2224278, 2237835
ई–मेल : prdpatna@prdbihar.gov.in
वेबसाइट : www.prdbihar.gov.in

इस अंक के प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के हैं, इससे विभाग व सम्पादक-मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

अपनी बात 2

विश्व का अकेला : सतरंगी रंग में रंगा सोनपुर मेला 3

बौद्ध महोत्सव : एक झलक 6

अनेकता में एकता को प्रस्तुत करता : राजगीर महोत्सव 10

विक्रमशिला महोत्सव से विरासत को मिला नया आयाम 14

अतीत का साक्षी : मंदार महोत्सव 17

चम्पारण महोत्सव : एक दृष्टि 20

वाणावर महोत्सव : एक झांकी 22

तपःस्थली में प्रारंभ : तपोवन महोत्सव 25

देव महोत्सव की परम्परा 28

इतिहास के आइने में वैशाली महोत्सव 30

इतिहास व संस्कृति का संगम : उत्सव-महोत्सव 34

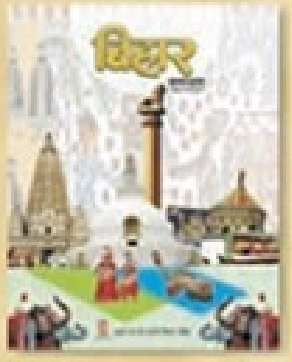

बिहारी संस्कृति और उसके सच की कहानी अनुपमेय है। यह प्रदेश भारत का एक ऐसा भू-भाग है, जहाँ भारतीय सांस्कृतिक परिवेश विविधता में एकता का दिग्दर्शन करता है। बिहार की संस्कृति; विविध रीति-रिवाज, भाषा, परंपराओं लोकमान्यताओं एवं लोकस्थाओं के सम्मिश्रण व समन्वय से बनी है। इसकी पावन भूमि पर जहाँ मानव सभ्यता का विकास हुआ, वहीं गणतंत्र का प्रथम किसलय भी इसी की क्यारी से पल्वित-पुष्पित एवं फलित हुआ। पाषाणयुग से लेकर गुप्तकाल एवं उसके बाद के कालखंडों की महत्ता से सारा विश्व अवगत है। ज्ञान का केन्द्र नालंदा, विक्रमशिला, वैशाली, राजगीर, पाटलिपुत्र, बोधगया सहित यहाँ अन्य कई स्थल है, जो प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए भी विख्यात रहा है।

दरअसल बिहार से जुड़े कई अन्य ऐसे अवयय भी हैं, जो शासन व्यवस्था, नीति-नियम, आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, चित्रकला, लोकगीत-संगीत आदि भी विश्व समुदाय पर अपनी छाप छोड़ने में कामयाब रहा है। बिहार की लोक-संस्कृति क्षेत्र विशेष की रीति-रिवाजों, प्रथा-विधान, लोकोक्तियों, लोकगाथाओं लोक जीवन से जुड़े संस्कारों, पर्व-त्योहारों, वस्त्र-आभूषणों धार्मिक विश्वासों 'नृत्य कलाओं तथा जीवन मूल्यों पर आधारित है। इसीलिए यहाँ का उत्सव महोत्सव, पर्व-त्योहार, बड़े धूम्धाम के साथ अन्तरमन से मनाया जाता है। यहाँ के लोकगीत और लोक संगीत का अपना अलग मिठास है, जिसका गायन अवसर विशेष पर होता है। अवसर विशेष पर गाये जाने वाले गीतों की पृष्ठभूमि सामाजिक सरोकार से जुड़ी हुयी होती है। यहाँ के छठ गीतों में धार्मिक महत्त्व के साथ-साथ समरस समाज, बेटी-बहू का सम्मान आदि का भाव निहित है। होली गीतों, जिसका गायन वसंत पंचमी से होता है, में श्रृंगार का आधिक्य होता है। इस गीतों में राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंग की विशेष चर्चा होती है। वहीं छठ के गीतों में भक्तिभाव छलकता है।

प्रगति का नया इतिहास रचता बिहार पर्यटन के क्षेत्र में विकास के लिए प्रतिबद्ध है। यहाँ के छहः प्रमुख पथों यथा : बौद्ध परिपथ, रामायण परिपथ, शक्ति परिपथ, जैन एवं सिख तथा गाँधी परिपथों को चिन्हित कर उसपर अवस्थित मुख्य पर्यटक स्थलों का विकास तथा पर्यटकीय संरचनाओं का निर्माण करने की योजना पर त्वरित गति से कार्य किया जा रहा है। आज राज्य में बौद्ध महोत्सव, राजगीर महोत्सव एवं सोनपुर मेला का आयोजन सहित वाणावर, मिथिला महोत्सव, विक्रमशिला, मंदार महोत्सवों का भव्य आयोजन किया जाता है, जिसमें ख्यातिलब्ध कलाकार शिरकत कर गीत, नृत्य एवं गायन का रसास्वादन कराते हैं।

'वसुधैवकुटुम्बकम' की अवधारणा को सच साबित करते हुए बिहार आज सर्वधर्म सद्भाव, आपसी भाईचारा सहित विकास का मॉडल बन गया है। आज हर बिहारी अपनी गौरव गाथा से जुड़कर नया कुछ करने का मद्दा रखता है। आमजनों में नई जागरूकता और बिहार को आगे बढ़ाने की नई ललक पैदा हो गई है, जो बिहार विकास के लिए शुभ है।

इस अंक में राज्य में मनाये जानेवाले महोत्सवों यथा : बौद्ध महोत्सव, सोनपुर मेला, राजगीर महोत्सव, विक्रमशिला महोत्सव, मंदार महोत्सव, चम्पारण महोत्सव, वाणावर महोत्सव एवं तपोवन महोत्सव आदि पर विशेषतया प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है, जिसके चलते यह अंक महोत्सव विशेषांक के स्वरूप को ग्रहण कर चुका है। आशा है यह अंक भी सुधी-पाठकों को रुचिकर एवं ज्ञानवर्द्धक लगेगा। ●

(प्रत्यय अमृत)
सचिव
सूचना एवं जन-सम्पर्क विभाग

विश्व का अकेला : सतरंगी रंग में रंगा सोनपुर मेला

❑ डॉ० रामबदन बरूआ

बिहारी समाज और इसकी संस्कृति संपूर्ण दुनिया के लिए पुराकाल से ही शोधस्थली बनी रही है। यहां का सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत इतना समृद्ध है कि इस उर्वरा क्यारी में नित-नूतन सतरंगी फूल खिलते रहे हैं। इस पावन भूमि को कई धर्मों एवं परंपराओं का जन्मस्थली होने का गौरव भी प्राप्त है। कालक्रम में कतिपय कारणों से सत्ता-शासन में परिवर्तन तो जरूरी हुआ किन्तु यहाँ की संस्कृति व आम आदमी की जीवन-शैली लगभग यथावत बनी रही। ऐसे ही संस्कृतियों में से एक हैं बिहार के मेला संस्कृति, जो राज्य के विविध क्षेत्रों में समय-समय पर लगता रहता है और आम आदमी से लेकर विशिष्ट-जन तक इसमें बड़े उत्साह के साथ अपनी-अपनी भागीदारी निभाते हैं।

सोनपुर का मेला, जो कार्तिक मास के पूर्णिमा तिथि से प्रारंभ होकर लगभग एक मास बाद समाप्त होता है। इस मेला से जुड़े कुछ ऐसे अनछुए पहलू हैं, जो अपने आप में एक गाथा को समेटे हुए हैं। इसके एक नहीं, अनेक रूप हैं, जो इन्द्रधनुषी रंग को उकेरने में कामयाब दिखता है। इसके तह में एक तरफ गज-ग्राह का कथा-प्रसंग है तो दूसरे तरफ बाबा हरिहरनाथ मंदिर की स्थापना,

गंडक-गंडकी व नारायणी नदी का बखान सहित कार्तिक पूर्णिमा के दिन कोनहारा घाट के संगम का महात्म पक्ष भी समाने आता है।

इस मेला में स्वतंत्रता-संगाम के दरमियान जहाँ राजा-रजवाड़े मंत्रणा के लिए पधारते थे, वहीं साधु-संतों की वाणी की अविरल अमृत वर्षा भी होती थी। इसके अलावा पशु-पक्षी से लेकर रोजगर्रा की वस्तुओं का इतना बड़ा बाजार भी कहीं नहीं दिखता। लोग अपने पारंपरिक परिधान में सजे-संवरे उत्साह के साथ मेला में आते हैं और खरीद-फरोख कर रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम का लुत्फ उठाते हैं। इस तरह का नजारा कदाचित ही अन्यत्र मलों में दिखता है। इस मेला के कई ऐसे दुर्लभ योग भी है, जो दुनिया में लगने वाले किसी मेला में मुमकिन नहीं है। इसीलिए यह अपने आप में अकेला और संधि का मेला के नाम से भी सोनपुर का मेला अलंकृत होते रहा है।

इसके महात्म के संदर्भ में कहा जाता है कि गंडक नदी के कोनहार घाट पर ही गजेन्द्र मोक्ष हुआ था। यहीं पर विष्णु भक्त हाथी तथा शिवभक्त घड़ियाल का युद्ध हुआ था। इसकी चर्चा 'वमन पुराण' और 'बाराह-पुराण' में वर्णित है। इससे संदर्भित एक प्रसंग और भी आता है कि इस मेले के शुरूआत के पूर्व वैष्णव और शैव संप्रदाय में निरंतर युद्ध चलते रहता था। 'हरि' अर्थात विष्णु और 'हर यानी शिव। दरअसल दोनों सम्प्रदाय में

छत्तीस का संबंध था। गज-ग्राह युद्ध के उपरांत ही हरिहरनाथ की स्थापना हुई थी और यहीं पर (हरिहर क्षेत्र) में ही आपसी मिल्लत के उपरांत दोनों संप्रदायों का एक महासम्मेलन भी हुआ था। संतों का यहाँ आज भी डेरा लगता है और विविध पथ के लोग एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं। यह क्षेत्र धर्म क्षेत्र के रूप में भी चर्चित है। नदियों के संगम के चलते इस क्षेत्र का महत्व काफी बढ़ जाता है, जहाँ लोग कार्तिक मास में वास भी करते हैं। एक अन्य लोक कथा प्रसंग में राजा इन्द्र और अगस्त ऋषि के शाप की कथा आती है। इस कथा में अगस्त ऋषि ने राजा को हाथी होने का शाप दिया था देवल मुनि ने हाहा नामक गंधर्व को घड़ियाल बनने का शाप दिया था। ऐसा कहा जाता है कि 'गज-ग्राह' दोनों इसी पावन भूमि से शापमुक्त हुए थे।

सप्तनदियों में एक गंडक की चर्चा वाराह-पुराण और ब्रह्मण पुराण में आती है। नारायणी नदी की चर्चा महाभारत में भी क्षेपक रूप में है। इसमें स्नान का महात्म को दर्शाते हुए मुक्तिकारक बतलाया गया है। हिमालय से निकलने वाली इस नदी से शालिग्राम की मूर्ति, जो मान्यता के अनुसार भगवान रूप में पूण्य है, भी मिलती है। यह नदी नेपाल के सीमा क्षेत्र से बहती हुई गंगा में मिलती है। इसमें बारह मास जल भरा रहता है, इसलिए इसे सदानीरा के नाम से लोगों ने विभूषित किया है। सप्त गंडकी और गंडक इसका प्रचलित नाम है। नेपाल की सीमा में यह काली गंडक और नारायण नदी कही जाती है। शास्त्रों में भी नारायणी नदी की चर्चा आती है। गंडक नदी हमारी सांस्कृतिक धरोहरों में से एक है, जिससे कई परियोजनाओं का विस्तार हुआ है।

तट पर अवस्थित बाबा हरिहरनाथ का मंदिर विद्यमान है, जिसका आधा भाग नीला और आधा भाग भूरा है। किंवदंती के अनुसार हरिहरनाथ की स्थापना भगवान राम के हाथों सम्पन्न हुआ था। इस सच का परिज्ञान तो पुराविद जानें किंतु इतना सच तो अवश्य है कि यहाँ पधारने वाले श्रद्धालु जलाभिषेक के उपरांत लगने वाले मेला के अद्भुत नजारा हाथी दौड़, घोड़ा दौड़ देखकर फूले नहीं समाते हैं।

प्रसन्नचित रहना भी सुखी स्वास्थ्य का बहुत बड़ा कारक है, जिसका दिनानुदिन सामाजिक दौर में अभाव सा दिखता है। एक सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार संसार में 120 मिलियन लोग मेजर डिप्रेशन के शिकार हो गए हैं। इनमें स्त्री-पुरुष दोनों शामिल हैं। इस परिवेश में इस मेले का महत्व विशेषतः बढ़ जाता है।

कहा जाता है कि सोनपुर के मेला में जहां कई संप्रदायों और पंथों के मार्गी शिरकत करते थे, वहीं यहां मेला के बहाने कई राजा-रजवाड़े भी हाथी-घोड़ा पर सवार होकर उन्हें बेचने या खरीदने के लिए पधारते रहे थे। हालांकि इसके तह में गुप्त मंत्रणा हुआ करती थी, जो ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफत के लिए हुआ करती थी। आज भी सोनपुर इलाके में बालवा कुवारी गांव सहित हथिसारगंज, घोड़ा बाजार, बैल बाजार, लकड़ी बाजार आदि कई ऐसे मुहल्ले बस गए हैं, जो तत्कालीन समय में खिलाफत के लिए बहाना बनाकर मेला कहकर लगाया जाता था। किंवदंतियों

के अनुसार इस मेला से मौर्यवंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त ने 500 हाथी खरीदकर सेल्यूकस को भेंट किए थे। आखिरी मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर ने भी यहाँ से एक सफेद हाथी की खरीदारी की थी।

मानव समाज का अध्यात्मिक पक्ष एवं सांस्कृतिक पक्ष अव्वल नमूना माना जाता है, जबकि सभ्यता इतिहास उन्मुख माना जाता है। इसीलिए पूरब और पश्चिम में अंतर दिखता है। हमारी संस्कृति में पत्थरों, पेड़-पौधों में देव-पीतर का वास माना गया है, यही धरती एवं नदियों को माता की तरह पूज्य माना गया है। हमारी संस्कृति की गहराई आज तक पश्चिम वालों के समक्ष में नहीं आई है। रियो सम्मेलन के उपरांत पर्यावरण के दृष्टिकोण से पीपल और तुलसी के पौधों के बारे में जानकारी जरूर हुई, जो पर्यावरण का महत्वपूर्ण अंग है, जबकि हमारे यहाँ तुलसी का चौरा हर घर के आंगन में मिल जाता है और उसका संरक्षण युग-युग से हमारे यहाँ श्रद्धा के साथ दीप दिखाकर होते रहा है। इस तरह एक नहीं अनेकों उदाहरण हमारे यहाँ व्याप्त है, जो पश्चिम में ढूंढने पर भी नहीं मिलता। हमारी संस्कृति में शाश्वत एवं सनातन की अभिव्यक्ति अधिक है और यह संकीर्णता के बजाय सामाजिक, सामूहिक और वैश्विक कल्याण को व्यापकता के साथ धारण कर दिखलाया गया है। इसमें सदैव आपसी मिल्लत और समरसता की धारा प्रवाहित होते रही हैं।

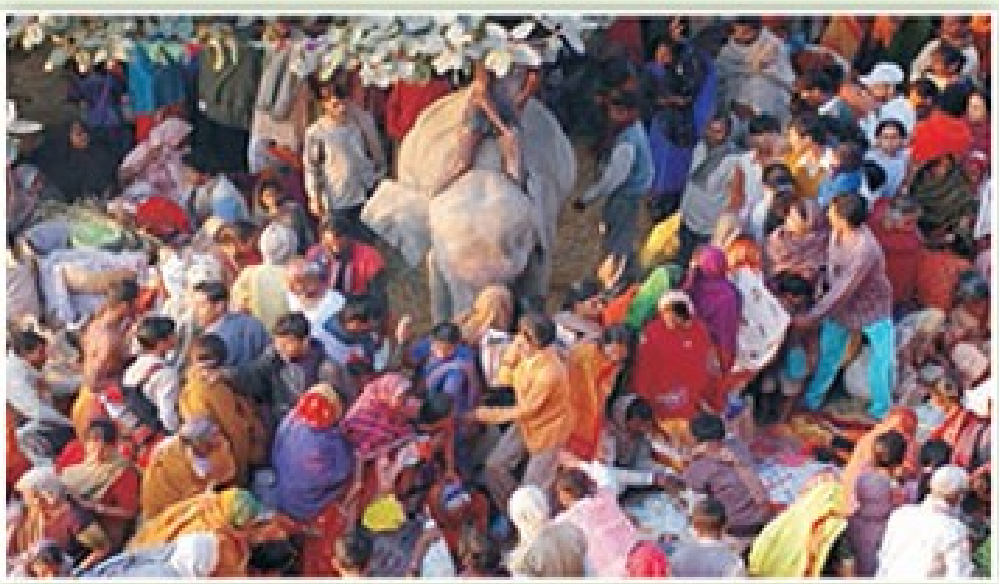

सोनपुर का मेला इसी सांस्कृतिक एवं सामाजिक समरसता का प्रतीक है, जहाँ हर तबके के लोग उन्मुक्त हो भागीदारी निभाते हैं। संत-महात्मा, फकीर, पर्यटक एवं आम-आदमी सभी इस मेला में इकट्ठा हो अपना-अपना रंग भरकर इसे सतरंगी बनाते हैं और मेला में हाथी दौड़, घुड़दौड़ तथा खेल-तमाशों का लुत्फ उठाते हैं। दूर-दराज के वयवसायी और बड़े-बड़े व्यापारी भी पीछे नहीं रहते और ये भी माल बेचने या खरीदने के बहाने इसमें शिरकत करते हैं। समान्य जिन्दगी में अक्सर ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं, जिसमें आदमी यदाकदा अपने को असहाय और कमजोर फिल करने लगता है। किंतु इस तरह के मेलों से उसमें नए उत्साह, जोश-खरोश और तरोताजगी का नूतन अहसास होता है और वह पुनः दूना उत्साह के साथ अपने कर्मक्षेत्र में लग जाता है।

मेला में पर्यटन विभाग द्वारा विशेष कार्य किया जाता है। विदेशी पर्यटकों को ठहरने के लिए कॉटेज निर्माण सहित सैलनियों के अन्य सुविधाओं का भी ख्याल रखा जाता है। सांस्कृतिक कार्यक्रम के आयोजनों का भी प्रबंध किया जाता है। इस मंच से देश-दुनिया के नामी-गिरामी कलाकार अपने कला का बखूबी प्रदर्शन करते रहे हैं।

भारतीय संस्कृति की पुण्य भूमि बिहार में आज भी अन्य संस्कृतियों की तरह मेला-संस्कृति भी पुष्पित-पल्वित हैं, जो अपनी सुवास दूर देश में फैला रही है। इस मेला में सरकारी-गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा भी निभायी जाती है, जो अपनी योजनाओं और कार्यक्रमों के साथ उपस्थित होते हैं। यह मेला अपने आप में अकेला माना जाता है, जिसमें एक साथ कई आयामों का योग पारदर्शिता के साथ चटक दिखता है।●

(लेखक, निदेशक-सह संपादक, सूचना एवं जन संपर्क विभाग, बिहार है।)

बौद्ध महोत्सव : एक झलक

❑ अशोक कुमार अंज

बिहार अनेक महापुरुषों, दार्शनिकों, ज्ञानी-विज्ञानियों, मनीषियों, सूफी-संतों, काव्यकारों एवं साहित्यकारों की जननी और कर्मभूमि रही है, जिन्हें आज भी बड़े अदब, आदर एवं श्रद्धा के साथ याद किया जाता है। उनके कृत्य दुनिया के लिए न सिर्फ कौतुहल एवं आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। बल्कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी ये सभी तीर्थस्थल के स्वरूप को ग्रहण कर चुके हैं, जहाँ विश्वभर के सैलानी इसे नजदीक से देखने समझने के लिए आते हैं।

महापुरुषों की स्मृतियों, नीतियों एवं उनके द्वारा दिए गए उपदेशों को देश-दुनिया एवं आमजनों के बीच पहुँचाने के उद्देश्य से राज्य सरकार द्वारा जहाँ इसे राजकीय समारोह के रूप में मनाने की व्यवस्था है, वहीं इसे उत्सव, महोत्सव के रूप में भी मनाने की परंपरा कायम की गई है। हर उत्सव-महोत्सव अपने सीने में ज्ञान का अक्षय भंडार छुपाये रहती है, जिससे आमजन को सीख लेनी चाहिए। ऐसे ही उत्सव-महोत्सव में से एक है- बौद्ध महोत्सव, जिसमें देश-विदेश के पर्यटक और विशिष्ट व्यक्ति भाग लेते रहे हैं।

गया की गौरवमय धरती उज्ज्वल अतीत की चिरस्मृतियों से घिरी हुई है। वर्तमान का निर्माण अतीत

का सुनहरा धरोहर-सा होता है। ज्ञान स्थली गया में शांति, सुकून, सौहार्द का वातावरण व्याप्त रहता है, जहाँ महाबोधि मंदिर में बुद्ध की पूजा होती है। यह मंदिर विश्व प्रसिद्ध है। बोधगया महान तीर्थ-स्थली है। गया को सामाजिक व धार्मिक सौहार्द का समागम स्थली माना जाता रहा है। यह हिन्दूधर्मावलंबी और बौद्धधर्मावलंबी दोनों के लिए समान रूप से पावन है। गया का विष्णुपद मंदिर और पितृपक्ष में लगनेवाला मेला में देश-विदेश के लोग पधारते हैं। यह सभी आगंतुकों को एकसूत्र में पिरोकर आपसी सौहार्द का सीख प्रदान करता है। ज्ञान और कर्मकांड के लिए यह दुनिया भर में प्रसिद्ध माना जाता है। महाबोधि मंदिर भी आपसी मिल्लत एवं धार्मिक एकता को प्रदर्शित करता है। यहाँ मंदिर पिरसर में एक पीपल का वृक्ष है, जिसका नाम है- बोधिवृक्ष। इस पीपल वृक्ष का विशेष महत्त्व है। यह पतित पावन एवं समृद्धिदायक होने के साथ-साथ इसके पत्ते का महत्त्व महात्मा बुद्ध के प्रसाद के रूप में माना जाता है। बोधि वृक्ष की महत्ता इतनी अधिक है कि यहाँ पधारने वाले श्रीलंका, भूटान, जापान, थाईलैंड आदि देशों के पर्यटक पत्ते को अपने साथ ले जाते हैं। यहाँ विश्वभर के बौद्धधर्म के अनुयायी महाबोधि मंदिर के दर्शनार्थ आते हैं। बोधगया हिन्दूओं का महान तीर्थ स्थल और बौधों के लिए काफी वंदनीय है।

अब महाबोधि मंदिर को विश्वधरोहर में शामिल किया गया है, जो प्राचीन भव्यता का परिचायक है।

किसी भी दर्शन को जीवंत एवं अक्षुण्ण बनाये रखने हेतु उसका अभियोजनशील होना अतिआवश्यक है। जब हम अपनी दृष्टि बौद्ध दर्शन पर डालते हैं तो हम पाते हैं कि बुद्ध ने 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' का नारा बुलंद किया था, जो आज आदर्श के रूप में स्थापित है। बौद्ध-दर्शन ने एक ठोस आधार प्रस्तुत किया, जिसके मूल में निर्माण काया, भोग काया एवं धर्म काया था। यही रूप जीवों का वास्तविक प्रकृति भी है। इसे तथागत की धर्मधातु की भी संज्ञा दी जाती रही है।

महामना बुद्ध ने धर्म में आये सामाजिक कुरीतियों एवं बुराईयों को दूर करने का अथक प्रयास किया था। विदित है कि बुद्ध द्वारा प्रणीत धर्म 'बौद्ध धर्म' कहलाया। महात्मा बुद्ध एक समाज सुधारक, अहिंसा के प्रवर्तक एवं कर्मवादी थे। वो कहा करते थे कि क्रोध को दया से अपने बस में करना चाहिए, और बुराई को अच्छाई से। बुद्ध ने जाति प्रथा का खुल कर विरोध किया था और कहा था कि कोई जन्म से नीच नहीं होता और नहीं उच्च। उन्होंने शुद्ध चरित्र को ही मुख्य आधार माना था। उनके चरित्र से ही व्यक्ति श्रेष्ठ या हीन होता है। जन्म से कोई कुलीन या श्रेष्ठ नहीं गिना जाता। यह सत्यासत चिंतन उनके मानवीय गुणों को परिलक्षित

करता है। बुद्ध धर्म में मानवों की जातीय भिन्नता सूचक पहचान नहीं है। उनका मानना है कि सभी मनुष्यों में एक गुण सदृश्य चिन्ह है। मनुष्य एक है, उसकी अति आवश्यक विशेषताएं एक है। समस्त प्राणियों के लिए न्याय, बंधुत्व, शांति एवं आनंदमय वातावरण बनाना ही बुद्ध के जीवन का मुख्य उद्देश्य था।

बुद्ध को जिन मतवादों एवं मार्गों का खंडन करना पड़ा था, उसका उल्लेख पालि त्रिपिटक में यत्र-तत्र मिलता है, जिसमें बुद्ध ने भिक्षुओं को अलग रहने का उपदेश दिया था। बुद्ध के उपदेश में हारे-मारे को शकुन, बिखरे दिलों को प्रोत्साहन, दलित-शोषित को नई आशा और नया विश्वास साफ-साफ झलकता है। उन्होंने अष्टांगिक मार्ग का प्रतिपादन किया था, जिनमें सभी दुखों से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त दिखलाया गया है। यथा : सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि।

बोधगया महात्मा बुद्ध की कर्मस्थली एवं तपस्थली रही है। वैसे गौतम बुद्ध का जन्म शाक्य गण प्रमुख के घर शाक्य राजधानी कपिलवस्तु में हुयी थी। बुद्ध का महापरिनिर्माण कुशीनारा में हुआ था।

अंतर्राष्ट्रीय गया का जो ऐतिहासिक महत्व है वह इस प्रकार है- 'अहिंसक व आस्थावान महापुरुष ने तत्कालीन समाज में पनपे खाई को मिटाने हेतु नया सिद्धांत एवं दर्शन दिया।' विदित है कि देश में शांति और उन्नति बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा अति आवश्यक है। महात्मा बुद्ध के आदर्श सभी अवधि के लिए अनुकरणीय व वंदनीय है। आज बोधगया के आदर्शों से प्रेरणा लेकर

सच्चाई और अच्छाई का नव-निर्माण करना हमसब का परम कर्तव्य बनता है। बोधगया बुद्ध की ज्ञान स्थली रही है। पीपल वृक्ष के पास बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। आज वहीं बोधिवृक्ष ज्ञान का प्रतीक बना हुआ है। बुद्ध मंदिर को महाबोधि मंदिर की संज्ञा दी गई है।

महाबोधि मंदिर विश्व धरोहर की श्रेणी में शामिल हो चुका है। बोधगया देश-विदेश के लोग आते हैं और बुद्ध की पूजा-अर्चना करते हैं। जो एकता, अखंडता, और भाई-चारे का संदेश देता है। इसे ही यादगार बनाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय बोध महोत्सव का आयोजन किया जाता है। यह महोत्सव तीन दिवसीय होता है। पर्यटन विभाग द्वारा महोत्सव का आयोजन किया जाता है, जिसमें देश ही नहीं, विदेशी कलाकार भी अपनी कला को प्रदर्शित करते हैं। इस समारोह में देशी-विदेश कला-संस्कृति की अनुपम छटा देखते ही बनती है। समारोह के माध्यम से

ज्ञानभूमि को बड़े सलीके के साथ सजाया-संवारा जाता है। महोत्सव की छंटा, मनभावन एवं सुहावन होता है। निरंजना नदी के तट पर बुद्ध तपस्या किया करते थे। तपस्या में लीन होने की वजह से बुद्ध की परिस्थिति बिगड़ती गई। अंततः पीपल वृक्ष के पास ही उन्हें सुजाता नामक कन्या के हाथ का खीर खाने के उपरांत ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। बोधगया बुद्ध की तपःस्थली तो है ही, ज्ञान स्थली भी है। बोधगया बुद्ध के स्मृतियों को संयोदिरा करनेवाली पावन स्थली के रूप में विश्वविख्यात है। बौद्ध महोत्सव का एक-एक पल सुनहरा व यादगार होने के साथ-साथ दुनिया भर के लोगों को सुखद अनुभूति प्रदान करनेवाला होता है। लोग इस सुखद पल का इंतजार करते हैं, क्योंकि यह महोत्सव हरेक साल धूमधाम के साथ मनाया जाता है। यहाँ कई संस्कृतियों और कलाओं का आपसी मेल होता है।

वैसे तो यहाँ पूरे वर्ष देशी-विदेशी सैलानियों की चहल-पहल कायम रहती है। महोत्सव का आनंद लेने के लिए देशी-विदेशी खास मेहमानों का आगमन विशेष रूप से होता है। बौद्ध मंदिर यह बिहार की पहचान है। यात्रीगण यहाँ पधारकर मंदिर में पूजा-अर्चना करते हैं और

भ्रमण भी। सैलानियों को खूब भाता है बोधगया। यहां सालो भर देशी-विदेशी यात्रियों की भीड़ लगी रहती है। यहां सुरक्षा की कड़ी व्यवस्था की गई है। ज्ञानभूमि पर श्रद्धालुओं की असीम भक्ति देखते ही बनती है। पर्यटकों को घूमना-फिरना, मौज-मस्ती करना है तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का लुत्फ उठाना विशेष आनंददायक होता है। महाबोधि मंदिर प्रांगण के चारो तरफ चाक- चौबंद सुरक्षा का पुख्ता इंतजाम रहता है। मुख्य मंदिर में प्रवेश के लिए पर्यटकों को मीटरडिटेक्टर से होकर गुजरना पड़ता है। महाबोधि मंदिर का गुम्बद सोनाजड़ित है, जो काफी आकर्षक है। यहाँ की छंटा निराली है। कहा जाता है कि इस मंदिर का गुम्बद सौ करोड़ का है। थाईलैंड ने 290 किलो स्वर्ण बोधगया महाबोधि मंदिर को प्रदान किया था। सोनाजड़ित महाबोधि मंदिर का गुम्बद चमकीला व मनभावन है। विदेशी कारीगरों ने इसे बड़ी ही खूबसूरती से निर्माण किया है। महोत्सव के मौके पर महाबोधि मंदिर बिल्कुल दुल्हन की तरह सोलहो-श्रृंगार के साथ सजा दी जाती है, जिससे अति प्राचीन मंदिर की खूबसूरती में विशेषतः निखार आ जाता है। विदित हो कि यह सोना थाईलैंड के राजा भूमिबोल आदूल्यादेज तथा वहाँ के श्रद्धालुओं द्वारा महाबोधि मंदिर को भेंट स्वरूप प्रदान की गई है। आज सोना जड़ित मंदिर का गुम्बद भी भगवान बुद्ध की ज्ञान की तरह ही चमक रहा है। महोत्सव के मौके पर अनेकों रंगा-रंग कार्यक्रम देशी-विदेशी कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। उस ऐतिहासिक गौरवपूर्ण क्षण का अवलोकन करने के लिए विदेशों से श्रद्धालु भक्तगण बोधगया पहुंचते हैं। यह महोत्सव कालचक्र मैदान में आहूत होता है। महोत्सव का आनंद लेने के लिए दर्शकों हेतु आकर्षक पंडाल का निर्माण किया जाता है, जो काफी खूबसूरत होता है।

राज्य सरकार द्वारा पूर्व मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार के कार्यकाल में पटना स्थित पुरानी जेल को बौद्ध स्मृति पार्क के रूप में विकसित किया गया है, जो अपने आप में बुद्ध की स्मृतियों को समेटे हुए है। मुख्यमंत्री एवं बौद्धगण दलाई लामा के कर कमलों द्वारा इसका उद्घाटन किया गया था। यहाँ भी बोधि वृक्ष लगाया गया है। ज्ञान स्थली में देशी-विदेशी पर्यटकों के बीच महोत्सव के उद्घाटन हेतु प्रदेश के मुख्यमंत्री सहित अन्य अतिविशिष्ट व्यक्ति भी आते रहे हैं। इस वर्ष बिहार के माननीय मुख्यमंत्री श्री जीतन राम मांझी आये थे, जिन्होंने अपने कर कमलों से दीप प्रज्जवलित कर इस महोत्सव का उद्घाटन किया था। उन्होंने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि गया हेरिटेज शहर के रूप में चयनित है। यहाँ रोप-वे का 41 लाख खर्च किया जाएगा। गया स्थित ब्रुंगेश्वरी ब्रहमयोनी तथा प्रेतशिला पर्वत पर रोप-वे का निर्माण कराया जाएगा। गया में आई.आई.एम की स्थापना की जाएगी ताकि विश्व समुदाय यहाँ आकर ज्ञानार्जन करें। आज आकर्षण बढ़ा है, जिससे बोधगया और भी निखर रहा है।●

(लेखक : पत्रकार व रचनाकार हैं)

अनेकता में एकता को प्रस्तुत करता : राजगीर महोत्सव

❑ लालबाबू सिंह

जंगलों एवं पहाड़ियों से घिरा राजगीर प्राकृतिक दृष्टिकोण से सुंदर तो है ही, इसकी ऐतिहासिकता भी पौराणिक रही है। यह स्थल सभी धर्मावलम्बियों के लिए काफी पावन माना जाता है। इसे जैन तीर्थ होने का भी गौरव प्राप्त है। यहाँ का विश्वशांति स्तूप जहाँ शांति का संदेश सुनता है, वहीं यहाँ का गर्म कुण्ड विज्ञानियों के लिए कौतुहल का केन्द्र रहा है। यहाँ का मलमास मेला भी काफी प्रसिद्ध रहा है, जहाँ दूर-दराज के लोग सहर्ष पधारते हैं। राजगीर में एक विशेष उत्सव का आयोजन किया जाता है, जिसे 'राजगीर महोत्सव' के नाम से अलंकृत किया गया है।

इस 15 दिवसीय महोत्सव का अनेकता में एकता एवं देश की सांस्कृतिक खुबसूरती को बढ़ाया है। राज्य से जुड़े राजगीर महोत्सव एवं अन्य महोत्सवों के आयोजन में अनेकता में एकता का दर्शन होता है। महोत्सवों के आयोजन से राज्य में पर्यटन के विकास को मदद मिलती है। हमारी गौरवपूर्ण संस्कृति एवं विरासत से लोग परिचित होते हैं। हमारा अतीत गौरवशाली रहा है। बिहार अपने अतीत को पुनः वापस लाने का प्रयास कर रहे हैं। पूर्व मुख्यमंत्री, श्री नीतीश कुमार की

घोषणाओं पर अमल कर राजगीर महोत्सव के आयोजन को तीन दिन से बढ़ाकर सत्रह दिन का कर दिया गया

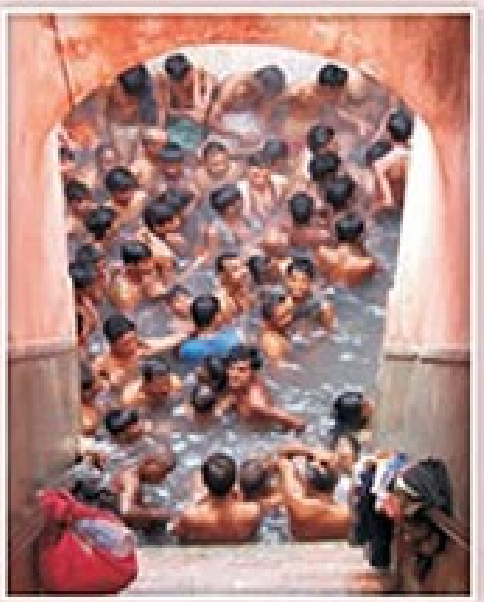

है। लोगों को इस अवधि में अनेक तरह के सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा कला एवं संस्कृति से जुड़े कार्यक्रमों को देखने और उनसे सीख लेने का अवसर मिलता है।

राजगीर एवं नालंदा में पर्यटन के विकास के लिये 120 करोड़ रुपये की योजनायें कार्यान्वित हो रही है, जिसमें घोड़ाकटोरा, रोप-वे एवं पाण्डव पोखर का विकास सम्मिलित है। पर्यटन से रोजगार का अवसर मिलता है तथा ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व के स्थलों का प्रचार-प्रसार भी होता है। कला एवं संस्कृति का आदान-प्रदान होता है, एक दूसरे की संस्कृति को जानने एवं संस्कृतियों के प्रति आदर

की भावना बढ़ती है। राज्य के सभी पर्यटन एवं सांस्कृतिक स्थलों को विकसित करने का कार्य राज्य सरकार द्वारा किया जा रहा है। पर्यटन स्थलों पर आवागमन, आवासन एवं अन्य सभी तरह की आधारभूत संरचनाएँ सृजित की जा रही है। आज राज्य में पर्यटकों के आने-जाने का सिलसिला निरंतर बढ़ रहा है। पहले राज्य में देशी-विदेशी पर्यटकों के आने-जाने का सिलसिला कम था लेकिन आज स्थिति बदल गई है। 2005 से पर्यटकों के यहाँ आने की संख्या निरंतर बढ़ रही है। अभी दो करोड़ से अधिक देशी एवं विदेशी पर्यटक सलाना बिहार आते हैं। आज राज्य में संस्कृति एवं आर्थिक विकास के लिये पर्यटन बड़ा माध्यम है, पर्यटन के विकास को गति दी जा रही है।

महोत्सव अपनी धरोहरों व विरासतों की याद दिलाता है। प्राकृतिक धरोहरों एवं दृश्यों को अपने आँचल में समेटे तथा नैसागिक खूबसूरती का प्रतीक राजगीर न सिर्फ भारत वर्ष में बल्कि वैश्विक पर्यटन के मानचित्र पर भी प्रमुखता से प्रतिष्ठित हैं। यह नगरी भारतवर्ष के उन मनोरम पर्यटक स्थलियों में से एक है, जहाँ हर दिन बड़ी संख्या में देशी-विदेशी सैलानी आते रहते है। दरअसल इन्हीं पर्यटकों को आकर्षित करने एवं राजगीर की प्राकृतिक धरोहरों तथा विरासतों से वैश्विक जन-मानस को रू-ब-रू कराने के उद्देश्य से प्रत्येक वर्ष

राजगीर महोत्सव का आयोजन किया जाता है। इस वर्ष 28 दिसम्बर 2014 से 13 जनवरी 2015 तक राजगीर महोत्सव पूरी भव्यता के साथ मनाया गया। महोत्सव का उद्घाटन करते हुए सूबे के मुख्यमंत्री द्वारा किया गया।

महोत्सव के आयोजन से हमारी पौराणिक एवं प्राकृतिक विरासतों से विश्व समुदाय को रू-ब-रू होने का मौका मिलता है। यह महोत्सव अनेकता में एकता का संदेश देता है। जहाँ एक तरफ इस तरह के आयोजनों से देश एवं राज्य की प्रतिष्ठा बढ़ती है, वहीं पर्यटन उद्योग के विकास होने से लोगों के लिए रोजगार के नये-नये अवसर भी उत्पन्न होते हैं। कार्यक्रम को सम्बोधित करते हुए पर्यटन मंत्री डॉ0 जावेद इकबाल अंसारी ने कहा कि नालंदा जिला में ऐतिहासिक धरोहरों की अधिकता हैं। इन्हें सहेजने एवं पर्यटन के मानचित्र पर स्थापित करने हेतु पर्यटन विभाग सतत प्रयत्नशील हैं। उन्होंने कहा कि राज्य में बुद्ध, जैन, रामायण, सिक्ख एवं सूफी सर्किट को विकसित कर धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देने की दिशा में भी प्रभावी कार्रवाई की जा रही है। विदित है कि अबतक राजगीर महोत्सव तीन दियसीय आयोजन हुआ करता था, पर इसकी महत्ता एवं लोक-प्रियता को देखते हुए इस वर्ष से इसे बहु दिवसीय कर दिया गया है।

प्रकृति की अनुपम छटा तथा पंच पहाड़ियों की वादियों में होने वाला राजगीर महोत्सव स्वयं में अनोखा है। खजुराहो के नृत्य महोत्सव की तरह पर्यटन विभाग ने सप्तधाराओं एवं इन पहाड़ीयों की सुरम्य वादियों से घिरे

क्षेत्र में 1986 में प्रथम बार इसका आयोजन किया था। 4 अप्रैल 1986 को बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री बिंदेश्वरी दूबे ने राजगीर स्थित स्वर्ण भंडार क्षेत्र में इसका उद्घाटन किया था। पर्यटन विकास निगम एवं भारतीय नृत्य कला मंदिर के सौजन्य, से होने वाले इस महोत्सव का नाम 'राजगीर नृत्य महोत्सव' रखा गया। 1989 में इसका नाम 'राजगरी नृत्य महोत्सव' कर दिया गया। कतिपय कारणों से 1989 से 1994 तक इस महोत्सव का आयोजन नहीं हो सका, पर 1995 से इसे पुनः प्रारंभ किया। विश्वशांति स्तूप की वर्षगाँठ को ध्यान में रखते हुए 24 से 26 दिसम्बर 1995 के बीच अपने नए एवं संवर्धित रूप में इस महोत्सव का आयोजन हुआ। तब से लेकर आज तक राज्य सरकार के प्रयासों से इस महोत्सव की भव्यता दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही है। अब ऐतिहासिक अजातशत्रु किला मैदान में आयोजित होनेवाला यह महोत्सव ऐतिहासिक, प्राचीनता, परम्परा एवं आधुनिकता के समन्वय का प्रतीक बन गया है।

राजगीर महोत्सव में देश-विदेश के नामी-गिरामी कलाकारों ने अपनी उपस्थिति एवं कला से इसके खूबसूरती में चार चाँद लगाया है। फिल्म अभिनेत्री हेमामालिनी, मिनाक्षी शेषाद्रि, स्व० भूपेन हजारिका, संयुक्ता पाणिग्रही, रविन्द्र जैन, निदा फाजली, तलत अजीज, पार्श्वगायक हरिहरण, बिरजू महाराज, स्वप्न सुंदरी, जसविंदर नरूला, अलका याज्ञनिक, हरि प्रसाद चौरसिया, पंडित शिव कुमार शर्मा, रूप कुमार राठौर, सोनाली राठौर, कैलाश खेर, कविता सेठ, गुलाम अली साहब जैसे मशहूर कलाकारों ने इस महोत्सव की गरिमा को एक नई ऊँचाई दी है। इस वर्ष 28 दिसम्बर 2014 से लेकर 13 जनवरी 2015 तक होने वाले आयोजनों में प्रीतम चक्रवर्ती एवं ग्रुप, जावेद अली, पूर्णिमा, पांडवानी गायिका, तीजन बाई सरीखे कलाकारों के अलावे श्री लंका, भूटान आदि देशों के लोक कलाकारों की मंडली ने अपनी

प्रस्तुतियों से इसकी खूबसूरती को नया आयाम से जोड़ा है। पर्यटन, कला-संस्कृति एवं युवा तथा सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग तथा जिला-प्रशासन नालंदा के सहयोग से चलने वाले इस 17 दिवसीय महोत्सव के भारतीय जन-जीवन के विविध रूपों की झलकियाँ भी मिलती है।

राजगीर महोत्सव ऐतिहासिकता एवं वैज्ञानिकता, परंपरा एवं आधुनिकता तथा ग्राम्य एवं नगरीय सामाजिक जीवन की संस्कृतियों का अद्भुत संगम है। यह महोत्सव जहाँ एक ओर अपने माटी से जुड़े कुश्ती, तांगा दौड़, पालकी सज्जा प्रतियोगिता जैसे आयोजनों के वजह से प्रसिद्ध है, वहीं आधुनिक एडवेंचर गेमों का आयोजन भी इसकी खूबसूरती को बढ़ाता है। इसका ग्रामश्री मेला कुटीर उद्योगों के उत्पादों एव उसके प्रोत्साहन को समर्पित है तो दूसरी तरफ आधुनिक सौंदर्य प्रसाधन एवं सामग्रियाँ भी यहां बहुतायत में उपलब्ध होती है। कृषि मेला, पुस्तक मेला, व्यंजन मेला एवं स्वरोजगार प्रदर्शनी आदि इसके अन्य आकर्षण है। इस वर्ष राजगीर महोत्सव ने खुद में एक नया आयाम जोड़ा है। ऐतिहासिक धरोहरों एवं विरासतों के प्रति अपनी नई पीढ़ी को जागरूक करने एवं इनके संरक्षण के प्रति उन्हें प्रेरित करने के उद्देश्य से प्रसिद्ध जरासंध अखाड़ा से गृद्धकूट पर्वत तक विरासत यात्रा का आयोजन किया गया। इसमें बौद्धभिक्षु, छात्र, देशी-विदेशी पर्यटक एवं आमजनों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। रास्ते में पड़ने वाले महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थलों के बारे में भी लोगों को जानकारी दी गई। दूसरी विरासत यात्रा गया जिला स्थित जेठियन से भगवान बुद्ध का प्रिय वर्षा वास स्थल वेणुवण तक आयोजित किया गया। इस यात्रा में उसी मार्ग का प्रयोग किया गया, जिससे होकर भगवान बुद्ध जेठियन से वेणुवन तक आए थे। इस यात्रा में कई देशों के बौद्ध भिक्षु, मुख्य सचिव अंजनी कुमार सिंह, पर्यटन सचिव डा० दीपक प्रसाद, जिला पदाधिकारी बी० कार्तिकेय, उप विकास आयुक्त रचना पाटिल सकेत सभी वरीय पदाधिकारी एवं काफी संख्या में देशी-विदेशी पर्यटक एवं आमजनों की सहभागिता रही। निःसंदेह राजगीर महोत्सव पर्यटकों को अपनी ओर आकृष्ट करने की दिशा में नित सफलता की नई बुलंदियों को छू रहा है।●

(लेखक : स.नि. सू.ज.स.वि. मुख्यालय हैं।)

विक्रमशिला महोत्सव से विरासत को मिला नया आयाम

❑ सुबोध कुमार नंदन

शिक्षा-जगत् में प्राचीन काल से अपनी वैश्विक पहचान रखने वाले विक्रमशिला विश्वविद्यालय के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और पयर्टकीय महत्व को देखते हुए बिहार सरकार ने वर्ष 2007 में तीन दिवसीय विक्रमशिला महोत्सव (28, 29 तथा 30 जनवरी) का आयोजन शुरू किया। इसके बाद इस प्राचीन विरासत को एक नया आयाम मिला। तब से महोत्सव का आयोजन पर्यटन विभाग तथा जिला प्रशासन भागलपुर के संयुक्त तत्वावधान में निरंतर रहा है। महोत्सव का मुख्य उद्देश्य इतिहास, कला, संस्कृति और पर्यटन के लिए स्थानीय और देश-विदेश के कलाकारों को एक मंच प्रदान करना है। पर्यटन विभाग द्वारा विक्रमशिला महोत्सव को राज्य के पर्यटन कैलेंडर में शामिल किया गया है। इससे इस महोत्सव की पहचान अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हो चुकी है।

राज्य सरकार के सहयोग से इस क्षेत्र को इको टूरिज्म को बढ़ावा देने के उद्देश्य से गंगा नदी मार्ग में क्रूज सेवा की शुरुआत (कोलकाता से वाराणसी) 2009 में हुई थी। बंगाल नैविगेशन कंपनी का पहला क्रूज पांडव चालीस विदेशी पर्यटकों को लेकर 2009 के सितम्बर माह में पहुँचा। क्रूज का पहला पड़ाव बटेश्वर (कहलगांव) में होने

लगा। इसके बाद विक्रमशिला आने वाले सैलानियों की संख्या में काफी इजाफा हुआ।

एक नजर में विक्रमशिला में आयोजित महोत्सवों को देखा जा सकता है। यथा : प्रथम महोत्सव- 28, 29 तथा 30 जनवरी 2007 । द्वितीय महोत्सव- 6, 7 तथा 9 फरवरी 2009 । तृतीय महोत्सव- 13, 14 तथा 15 मार्च 2010। चतुर्थ महोत्सव- 3, 4 तथा 5 मार्च 2011 । पंचम महोत्सव- 18, 19 तथा 20 अप्रैल 2012 । षष्ठम महोत्सव- 7, 10 तथा 11 अप्रैल 2013 आदि। यहीं पर स्थित था विक्रमशिला विश्व विद्यालय जो, नालंदा की तरह ही विश्व विश्रुत था। धर्मपाल (783-820) द्वारा स्थापित विक्रमशिला विश्वविद्यालय नालंदा विश्वविद्यालय की तरह ही विश्व विश्रुत था। यह विश्वविद्यालय विश्व का दूसरा आवासीय विश्वविद्यालय था। इसकी शैक्षणिक व्यवस्था विश्व विख्यात थी। यहां देश-विदेश के प्रकांड विद्वान विचारों का आदान-प्रदान करने हमेशा आया करते थे। यह विश्वविद्यालय तंत्रवाद की शिक्षा के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध था। दसवी सदी में यह तो नांलदा से भी बड़ा और पूर्वी एशिया में एक उत्कृष्ट शिक्षा केन्द्र बन गया था। नैतिक मानदंड और सम्यक ज्ञानदान की परम्परा निर्वाट में इसका कोई सानी नहीं था। विश्वविद्यालय के चारों

और दृढ़ और ऊंचे प्राचीर थे, जिसके मध्य में शिक्षा केन्द्र अवस्थित था। धर्मपाल के उत्तराधिकारी 13वीं शती तक इसे राजकीय संरक्षण प्रदान करते रहे। परिणामस्वरूप विक्रमशिला लगभग चार शताब्दियों से भी अधिक समय तक अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय बना रहा आदि देश-विदेश का विद्यार्थी यहाँ ज्ञानार्जन करते रहे।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय के भग्नावशेष बिहार के भागलपुर जिले के कहलगांव (अंतीचक) में स्थित है। उत्खनन स्थल जिला मुख्यालय से लगभग 45 किलोमीटर की दूरी पर पूर्व दिशा की ओर है। कहलगांव स्टेशन से इसकी दूरी लगभग 15 किलोमीटर तथा विक्रमशिला हॉल्ट से लगभग तीन किलोमीटर है। तिब्बती ग्रंथों में यह विश्वविद्यालय श्रीमद्विक्रमशीलदेव-महाविहार के नाम से प्रसिद्ध था और अपने उच्च आदर्श भव्यता और सार्वजनिक पूर्णता के कारण विक्रमशील नाम से विख्यात हुआ।

विक्रमशिला पुरास्थल के उत्खनन से एक विशाल वर्गाकार महाविहार अनावृत हुआ है, जिसके केन्द्र में क्रम के आकार वाले चैत्य में उभरे मंडप के साथ शिखरयुक्त चार कक्ष है। स्तूप की दो छतें हैं। चैत्य में एक ही प्रवेश द्वार है जिस तक पहुंचने के लिए एक रास्ता बना हुआ है।

208 कोठरियां हैं और बरामदा साथ में हैं। बरामदा की छत एक ही प्रस्तर खंड से बने स्तंभों पर टिकी है। कुछ गिरे हुए स्तंभों और स्तंभों की नींव स्थल पर अभी भी मौजूद हैं। विहार की बाहरी दीवार में बीस वृत्ताकार और बीस आयताकार कोठरियां हैं। इन कोठरियों में से प्रत्येक कमरे में तीन बिस्तर की सुविधा उपलब्ध है। लगभग 330 वर्ग मीटर आयताकार क्षेत्र में फैले विश्व विख्यात परिसर में दर्जनों ब्लाक्स

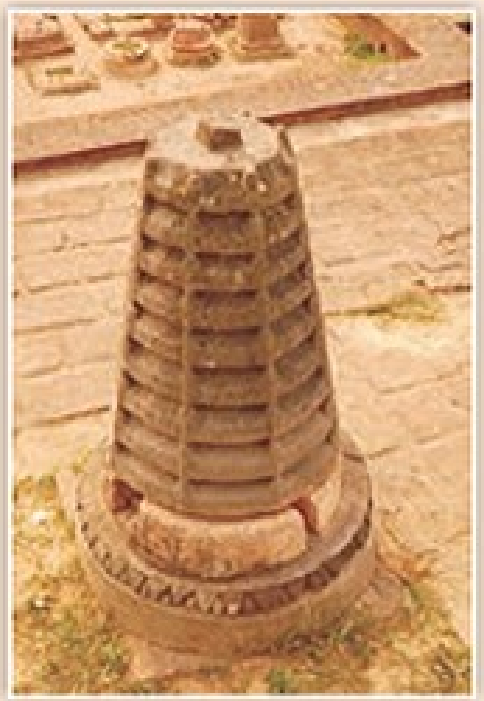

और प्रकोष्ठ है। कई जगहों से ईंट निर्मित मेहराबदार कमरों, जिनका उपयोग संभवतः योग साधना के लिए किया जाता था, को भी उल्खनित किया गया है। वर्तमान में मुख्य चैत्य के चारो पैनल को पूर्णतः खोदकर सामने ला दिया गया है। इनके द्वार प्रांगण बड़े ही विलक्षण रूप में निर्मित हैं। मुख्य प्रवेश द्वार के परिसर में दोनों ओर से खुलने वाले चार-चार कमरों की श्रृंखला हैं। यहां प्रथम चरण में चार सीढ़ियों की संरचना, तब तीन सीढ़ियां, तब दो-दो मीटर के अंतराल पर अंततः एक सीढ़ी की कलापूर्ण बनावट पायी गई है। विश्वविद्यालय प्रांगण के एक भाग में मन्नत स्तूपों की कई श्रृंखला पायी गई है।

विश्वविद्यालय के द्वार पर द्वारपंडित हुआ करता था। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ लामा ने लिखा है कि शिक्षा केन्द्र के दक्षिणी द्वार के द्वार पंडित का नाम प्रज्ञाकरमति था। इसी तरह पूर्वी द्वार पंडित का नाम रत्नाकर शांति, पश्चिमी द्वार के वागीश्वरकीर्ति और उत्तरी द्वार के द्वार पंडित का नाम नरोपन्त था। इन द्वारों से प्रवेश करने के बाद भी दो देवढ़ियां मिलती थी, जिन्हें पार कर ही मुख्य शिक्षा केन्द्र में कोई जा सकता था। इन देवढ़ियों के द्वार पर भी दो दिग्गज विद्वान रहते थे, जिनके प्रश्नों के उत्तर देने पर ही कोई प्रवेश पा सकता था। प्रथम देवढ़ी के पंडित का नाम रत्नव्रज था, जो प्रसिद्ध बौद्ध संन्यासी थे ओर दूसरे देवढ़ी के पंडित ज्ञानश्रीमित्र थे, जो बौद्धभिक्षु थे। इन द्वार पंडितों के समक्ष मौलिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थी ही विश्वविद्यालय में प्रवेश पा सकते थे। यहां देश की नहीं चीन, तिब्बत, वर्मा, जापान, मलेशिया, श्रीलंका, जावा, सुमात्रा आदि देशों से भी सैकड़ों ज्ञान पिपासु छात्र अध्ययन करने आते थे और वर्षों रहकर ज्ञान अर्जित करने के बाद वापस अपने देश

लौट जाते थे। शिक्षा पूरी करने के बाद विद्यार्थी को उपाधि प्राप्त होती थी, जो उनके विषय की दक्षता का प्रमाण मानी जाती थी।

विक्रमशिला में कुल 108 आचार्य विश्वविद्यालय में सदैव सेवारत रहते थे। पाल नरेश रामपाल के समय (1080 ईस्वी) यहां 108 आचार्य और लगभग 1000 आवासीय भिक्षु शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। विश्वविद्यालय में एक विशाल सभा भवन भी था, जिसमें एक साथ 8000 लोग बैठ सकते थे।

इस विश्वविद्यालय से जो छात्र उत्तीर्ण होते थे, राजा की ओर से उन्हें पंडित की उपाधि मिलती थी। नालंदा विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की तरह यहां के विद्यार्थी भी राजकीय उच्च पदों पर नियुक्त होते थे। यहाँ वेद, वेदांत, उपवेद, हेतु विद्या, सांख्य, योग, व्याकरण, तत्व मीमांसा और तर्कशास्त्र का अध्ययन विशेष रूप से किया जाता था। इसके अलावा चिकित्सा, शिल्पशास्त्र और अभिधममा के अध्ययन की भी समुचित व्यवस्था थी। विद्यार्थियों के आवास तथा भोजन की निःशुल्क व्यवस्था थी। छात्रों के आवास, भोजन प्रबंध, पठन-पाठन आचार्यों का वेतन और शिक्षावृतियों आदि से संबंधित वित्तीय मामलों के निदान के लिए पाल नरेशों की तरफ से कई गांव अनुदानित किए गए थे।

पाल राजाओं के राजकीय संरक्षण का सौभाग्य इस विश्वविद्यालय को प्राप्त था। राजा ही कुलाधिपति होते थे, फिर भी विश्वविद्यालय का सामान्य प्रबंध एवं प्रशासन, आधुनिक विश्वविद्यालय की सीनेट की तरह एक परिषद् के अधीन संचालित किया जाता था, जिसके अध्यक्ष महास्थवीर होते थे और कुलपति कहलाते थे।

विश्वविद्यालय के पास एक समृद्ध व वृहत पांडुलिपि की पुस्तकालय थी। तत्त्व मीमांसा, तंत्र विद्या, तर्क शास्त्र, व्याकरण और न्याय आदि से संबंधित पुस्तकों का यहां विशाल संग्रह मौजूद था। इन पांडुलिपियों को तैयार करने के लिए आचार्य और शोधार्थी दोनों अधिकृत थे। राजा गोपाल द्वितीय के 15वें वर्ष में अष्टसाहस्त्रि का पज्ञापारमिता की पांडुलिपि विक्रमशिला में ही तैयार की गई थी।

विश्वविद्यालय की प्रबंध समिति की देख-रेख में तालपोथियों व पांडुलिपियों का संकलन, पुनर्लेखन और उनपर चित्रांकन निरंतर जारी रहा। 1203 ईस्वी में मुस्लिम आक्रांता मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने विक्रमशिला विश्वविद्यालय को किला के भ्रम में ध्वस्त कर दिया। भिक्षुओं की सामूहिक हत्या कर दी गई तथा ग्रंथों को जला दिया गया। इस समय विश्वविद्यालय के कुलपति शाक्यश्रीभद थे। गौरवशाली अतीत का विस्मृति चिन्ह अभी भी जमींदोज है। विक्रमशिला महोत्सव इसी के स्मृति को तरोताजा करने के उद्देश्य से मनाया जाता है, जिसमें देश-विदेश के पर्यटक बड़ी संख्या में शौक के साथ पधारते हैं।●

(लेखक : दैनिक हिन्दुस्तान के भागलपुर संस्करण में कॉपी राइटर हैं।)

अतीत का साक्षी : मंदार महोत्सव

❑ कुमार कृष्णन

भागलपुर की सीमा से जुड़ा बाँका जिला मंदार पहाड़ होने की वजह से काफी प्रसिद्ध है। इसी के समीप मंदार महोत्सव का आयोजन होता है, जिसमें दिग्गज राजनेता और अवसर विशेष पर होनेवाले कार्यक्रम में चोटी के कलाकार पधारते हैं। यहीं अनेक पौराणिक किंवदंतियों से जूझता मंदार पर्वत शांत, अविचल खड़ा है। काले पहाड़ पर उकेरी हुई कलाकृतियाँ सहज ही अतीत में खो जाने को विवश करती हैं। मधुकैटभ का विशाल चेहरा, जिस पर नजर पड़ते ही कल्पना तेज उड़ान भरने लगती है। पपहरणी यानी पापहारिणी का जल आज भी पूर्ण सक्षम है शायद...। तभी तो हर साल मकर संक्रांति के दिन उसमें अनगिनत डुबकियाँ लगती हैं। लोगों के हुजूम के बीच 'मधुसूदन' यानी 'मधु' का 'सूदन' करने वाले भगवान विष्णु की रथ यात्रा-बाँसी स्थित मंदिर से मंदार पहाड़ तक चलती है। आगे-आगे रथ पर सवार मधुसूदन और पीछे-पीछे उनकी जय बोलती भीड़। कब से शुरू हुआ यह सिलसिला? दावे के साथ कोई कुछ बताने की स्थिति में नहीं है फिर भी एक नजर कभी समुद्र का मंथन करनेवाले मंदार के अतीत-वर्तमान पर डालने पर शास्त्रीय बातें और लोकोक्तियाँ व लोकपरंपरा सब कुछ सामने आ जाता है।

उल्लेखनीय है कि मकर संक्रांति पर लगने वाला यह बिहार का महत्वपूर्ण मेला है और यह वही क्षेत्र है, जहाँ 'मधु' का संहार कर भगवान विष्णु मधुसूदन कहलाए। आज यहाँ विशाल पैमाने पर मकर संक्रांति के दिन से पाँच दिवसीय मंदार महोत्सव का आयोजन होता है, जिसमें दूर-दूर के आमजन और विशिष्टजन तथा चोटी के कलाकार भाग लेने आते हैं।

मेला एवं महोत्सव के संदर्भ में

कई बातें सामने आती है। पौराणिक कथा के अनुसार भगवान विष्णु ने मधुकैटभ राक्षस को पराजित कर उसका वध किया और उसे यह कहकर विशाल मंदार के नीचे दबा दिया कि वह पुनः विश्व को आतंकित न करे। पुराणों के अनुसार यह लड़ाई लगभग दस हजार साल तक चली थी। दूसरी तरफ महाभारत में वर्णित है कि समुद्र मंथन में देव और दानवों के पराजय के प्रतीक के रूप में ही हर साल मकर संक्रांति के अवसर पर यह मेला लगता है। विदित है कि समुद्र-मंथन के दरमियान मंदार को ही मथनी बनाया गया था।

इसके विपरीत पापहरणी तालाब से जुड़ी किंवदंती के मुताबिक कर्नाटक के एक कुष्ठपीड़ित चोलवंशीय राजा ने मकर संक्रांति के दिन इस तालाब में स्नान कर स्वास्थ लाभ किया था और तभी से उसे पापहरणी के रूप में प्रसिद्धि मिली। इसके पूर्व पापहरणी 'मनोहर कुंड' के नाम से जानी जाती थी। एक अन्य किंवदंती है कि मौत से पहले मधुकैटभ ने अपने संहारक भगवान विष्णु से यह वायदा लिया था कि हर साल मकर संक्रांति के दिन वह उसे दर्शन देने मंदार आया करेंगे। कहते हैं, भगवान विष्णु ने उसे आश्वस्त किया था। यही कारण है कि हर साल मधुसूदन भगवान की प्रतिमा को बाँसी स्थित मंदिर से मंदार पर्वत तक की यात्रा कराई जाती है, जिसमें लाखों लोग शामिल होते हैं। किंवदंतियों और पौराणिक कथाओं से उपजी यही आस्था हर साल मकर संक्रांति पर मंदार की गोद हरी-भरी करती रही है। साल-दर-साल मेले में बढ़ती भीड़ गहरी होती चली जा रही आस्था का ही प्रतीक है।

समुद्र मंथन के प्रतीक मंदार पर्वत की हकीकत क्या है? क्या वास्तव में देवासुर संग्राम में इसे मथानी बनाया गया था? और उस क्रिया में जिस नाग को रस्सी की तरह प्रयोग में लाया गया था, पहाड़ पर अंकित लकीरें क्या उसी का साक्ष्य हैं या कि यह पर्वत एक प्रतीक है आर्य-अनार्य टकराव का?यदि इस पहाड़ से जुड़े सिर्फ धार्मिक पक्ष को ही स्वीकार करें, तब भी इस सच्चाई की तीव्रता जरा भी कम नहीं होती। समुद्र मंथन से निकले गरल का पान भगवान शंकर ने किया। वह भगवान शंकर आज भले ही सर्वत्र पूजनीय हों, लेकिन समुद्र मंथन तक वे अनार्यों (आसुरों) के देवता के रूप में ही मान्य थे। यही नहीं, आज भले ही मंदार की भौगोलिक सीमा में मधुसूदन की जयजयकार लगती हो, समुद्र मंथन के वक्त तक यहाँ भगवान शिव के ही त्रिशूल चमकते थे। इसका प्रमाण भागवत पुराण में वर्णित तथ्य में भी है कि मंदरांचल की गोद में देवताओं के आम्रवृक्ष हैं, जिसमें गिरि शिखर के समान बड़े-बड़े आम फलते हैं। आमों के फटने से लाल रस बहता है। यह रस अरूणोदा नामक नदी में परिणत हो जाता है। यह नदी मंदरांचल शिखर से निकलकर अपने जल से पूर्वी भाग को सींचती है। पार्वती जी की अनुचरी यक्ष पुत्रियाँ इस जल का सेवन करती हैं। इससे उनके अंगों से ऐसी सुगंध निकलती है कि उन्हें स्पर्श कर बहने वाली हवा चारों ओर दस-दस योजन तक सारे देश को सुगंध से भर देती हैं।

गौरतलब है कि पार्वती की मौजूदगी, शिव की उपस्थिति का संकेत देती है।

संदर्भ में भले ही कई सवाल खड़ा हो उठे किन्तु इतना तो सच है कि समुद्र मंथन के उपरांत विषपान भगवान शंकर ने ही किया था। किसी अन्य देवता ने यह साहस नहीं दिखायी थी।

बहरहाल अटकलों और सवालों की गहमा-गहमी के बावजूद खामोश खड़ा मंदार पर्वत आज भी सांस्कृतिक गरिमा बिखेर रहा है। पोर-पोर में उकेरी हुई कलाकृतियाँ अपने अतीत से रू-ब-रू करा रही हैं। मंदार भागलपुर प्रमंडल के बाँका जिला के बौसी में है। मंदार पर्वत के मध्य में शंखकुंड अवस्थित है। कुछ वर्ष पूर्व इस कुंड में करीब बीस मन का शंख देखा गया था। मान्यता है कि शंकर की ध्वनि से भगवान विष्णु प्रसन्न होते हैं। मंदार पर्वत पर चढ़ने के लिए करीने से पत्थर की सीढ़ियाँ तराशी हुई हैं। कहते हैं ये सीढ़ियाँ उग्र भैरव नामक राजा ने बनवायी थीं। मंदार पर्वत पर चढ़ने के साथ ही सीताकुंड मिलता है। पर्वत के ऊपर एक काफी बड़ी मूर्ति है जिसकी पहचान लोग विभिन्न रूपों में करते हैं। थोड़ा आगे आने एक स्तंभ पर छोटी-मोटी मूर्तियाँ हैं, जो सूर्य देवता की हैं। थोड़ा ऊपर जाने पर एक काफी बड़ी मूर्ति है, जिसे तीन मुख और एक हाथ है। यह मूर्ति महाकाल भैरव की बतायी जाती है, यहीं पर एक छोटी मूर्ति गणेश की तथा दूसरी सरस्वती की थी। ये मूर्तियाँ भागलपुर के संग्रहालय में रखी हुई हैं। अभी भी गुफा में कुछ मूर्तियाँ रखी हुई हैं। मध्य में नरसिंह भगवान का एक मंदिर है। जहाँ पूजा पाठ के लिए राज्यांश की राशि सरकार द्वारा दी जाती है। पहाड़ के बीचों-बीच छह फीट की दूरी पर दो समानान्तर गहरे दाग हैं। मान्यता है कि समुद्र मंथन के दौरान नागनाथ और साँपनाथ के लपेटे जाने का यह प्रतीक है। मंदार की तलहटी में स्थित पापहरणी सरोवर के मध्य में बाँका के तत्कालीन जिला पदाधिकारी तेज नारायण दास के प्रयास एवं सहयोग से अष्टकमल मंदिर का निर्माण कराया गया, जो सरोवर को भव्यता प्रदान करते हैं। इस मंदिर में विष्णु, महालक्ष्मी, ब्रह्मा की आकर्षक मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित की गई।

पद्मश्री चितु टुडू बताते हैं कि संथाली गीतों में भी मंदार की महिमा का जिक्र है। संथाल जनजति के महान पर्व सोहराय के अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीतों में मंदार का वर्णन आता है। वहीं मंदार में जैन धर्म के बारहवें भगवान वासुपूज्य ने कैवल्य प्राप्त किया और संसार की प्रवृतियों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर कर्म के बंधन से मुक्त हो गए। तदोपरांत संसार के समस्त जीवों को घूम-घूमकर धर्मोपदेश देते हुए भाद्रपद शुक्ला की चतुर्दशी को मंदार शिखर पर इन्हें निर्वाण प्राप्त हो गया। आज भी भगवान वासुपूज्य के तपकल्याणक के प्रतीक गुफा मंदार पर्वत पर विराजमान है, जिसकी प्राकृतिक छटा मनमोहक है। यह गुफा युगों-युगों से मौन रहकर मंदार पर्वत पर आने वाले सैलानियों को भगवान वासुपूज्य की सत्य, अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह की शिक्षा दे रहा है। यहाँ सालभर जैन धर्मावलंबियों, तीर्थयात्रियों और पर्यटकों की भीड़ रहती है। वेदव्यास, बाल्मीकि, तुलसीदास, जयदेव, कालिदास जैसे साहित्य सृष्टाओं ने अपनी लेखनी से मंदार या मंदरांचल को चिरअमरत्व प्रदान किया है, तो फ्रांसिस बुकानन, सेरविल, सर जश्न फेथफल, फ्लीट, मौटगोमेरी मार्टिन जैसे पाश्चात्य विद्वानों को मंदार ने आकर्षित किया तभी तो उन्होंने मंदार का जिक्र अपनी लेखनी से किया है।

मंदार को केंद्र में रखकर हर वर्ष मकर संक्रांति के अवसर पर सरकारी स्तर पर मंदार महोत्सव का आयोजन किया जाता है और इस अवसर पर तरह-तरह की सरकारी घोषणाएँ भी होती हैं। लिहाजा आज भी मंदार का विकास पर्यटन के लिहाज से निरंतर जारी है। मेले के अलावा अन्य दिनों में भी पर्यटकों का आना-जाना लगा रहता है। पहाड़ पर जाने के लिए रज्जू मार्ग के निर्माण व्यवस्था सहित अन्य पर्यटकीय सुविधाओं के विकास हेतु प्रयास जारी है। मंदार महोत्सव दिनानुदिन अपने गणर्तव्य की ओर बढ़ रहा है, जो शुभाशुभ का प्रतीक है।●

(लेखक : चिंतक एवं स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

चम्पारण महोत्सव : एक दृष्टि

❑ अवधेश के० नारायण

बिहार के तिरहुत प्रमंडल का जिला चम्पारण जो नेपाल की सीमा से लगा हुआ है, जहाँ एक नहीं अनेक ऐतिहासिक स्थल विद्यमान है। वैसे तो चम्पारण शब्द चम्पा जो फूल का सूचक है वही आरण्य का अर्थ जंगल होता है। ऐसा लगता है इन्हीं दोनों शब्दों के योग से चम्पारण का निर्माण हुआ है। फिलवक्त यह पूर्वी चम्पारण (मोतिहारी) और पश्चिमी चम्पारण (बेतिया) के रूप में विभक्त है किन्तु यह दोनों कभी एक ही जिला हुआ करता था।

पौराणिक आरव्यानों से लेकर आधुनिक काल में स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़े कई ऐसे प्रसंग हैं, जो निश्चित रूप से यह सिद्ध करते है कि आज भी यहाँ फूलों का सुवास व्याप्त है।

यहाँ रामायण काल में महर्षि बाल्मीकि के आश्रम होने का प्रमाण मिलता है, तो सम्राट अशोक का लाट (शीला लेख) आज भी अपनी समृद्धि का बयान करता है। यहाँ आज भी बौद्ध धर्म के अनुयायी देश-विदेश से पधारते हैं, कारण भगवान बुद्ध कुशीनगर जाते समय यहाँ केसरिया में ठहरे थे। यहाँ बारहो मास मेला की स्थिति बनी रहती है। इसी अशोक स्तम्भ के तीन सिंह, वृषभ और चक्र को भारत गणराज्य के प्रतीक चिह्न होने का गौरव प्राप्त है। इसी धरती की माटी पर महात्मा गाँधी ने 1917 में नील कृषकों की समस्या के निवारण हेतु पधारे थे और उन्होंने

आजादी का बिगुल फूंका था। वस्तुतः आजादी की लड़ाई की अंगराई इसी चम्पारण की पावन भूमि से प्रारम्भ हुई। वह इस अर्थ में कि जब गोपालकृष्ण गोखले ने गाँधी जी को सम्पूर्ण हिन्दुस्तान भ्रमण करने का निदेश दिया था, तो गांधी जी बिहार के चम्पारण को विशेषतया जानते तक नहीं थे। हालाँकि चम्पारण का एक अकेला मर्द पं० रामकुमार शुक्ल ने इस धरती पर महात्मा गांधी को लाने का जरूर संकल्प लिया था। उन्होंने वैसा किया भी। ये उनकी आँखो से किसान की दुर्दशा दिखलाया। पंडित राजकुमार शुक्ल ने गांधी जी का पीछा करते हुए प्रथमतः उनसे आश्वासन प्राप्त किया और अन्ततः उन्हें चम्पारण की धरती पर पदार्पण भी कराया।

1917 में जब गांधी जी बिहार के चम्पारण में आए तो नील के किसानो की दशा उनसे देखी नहीं जा रही थी। अंग्रेजो द्वारा किसानों पर किए जा रहे अत्याचारों से गांधी जी न सिर्फ रू-ब-रू हुए बल्कि नील के किसानों के सुर से सुर मिलाते हुए सविनय अवज्ञा की शुरूआत की, जो आगे चलकर आजादी की लड़ाई का बहुत बड़ा हथियार साबित हुआ और मोहन दास करमचन्द्र गांधी सविनय अवज्ञा आन्दोलन के महानायक बने। इसी धरती से वे महात्मा गांधी कहलाए। चम्पारण भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास का एक महम्वपूर्ण कड़ी है। यहीं पर महात्मा गांधी ने प्रथम आश्रम की स्थापना की और शिक्षा के विकास के लिए कस्तुरबा गाँधी, महादेव भाई देसाई, देवदास के साथ इसी आश्रम में रहते भी थे।

चम्पारण की धरती ने एक से बढ़ कर सपुतों को जन्म दिया। बिहार के गोखले ब्रजकिशोर बाबू, डा० राजेन्द्र प्रसाद, मजहरूल हक की यह कर्म भूमि रही है। गांधी जी के साथ रामनवमी प्रसाद, आचार्य कृपलानी, रामदयालु सिंह आदि सरीखे कई ऐसे लोग हो गए, जो महात्मा गांधी के साथ

चम्पारण के सत्याग्रह में शामिल थे।

महात्मा गांधी ने इसी धरती से सत्याग्रह के अलावा, मानव अधिकारों के मूल्य, स्वतंत्रता का अधिकार, रोटी कपड़ा मकान की परिकल्पना करते हुए इसे प्रयोगात्मक बनाया। लोग चम्पारण को सत्याग्रही जिला भी कहते हैं ।

इसी धरती से महात्मा गांधी ने सत्याग्रह शुरू किया। इसी सत्याग्रह के बाद स्वतंत्रता संग्राम में गति आई अंततोगत्वा देश को आजादी मिली। इसी चम्पारण की धरती पर बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री, माननीय नीतीश कुमार ने वर्ष 27-28 फरवरी एवं मार्च अर्थात तीन दिवसीय चम्पारण महोत्सव का शुभारंभ किया। यह महोत्सव केसरिया बच्चा सिंह कॉलेज के बगल में प्रत्येक वर्ष आयोजित होता है। इस अवसर पर रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। हर्ष, उल्लास का माहौल व्याप्त रहता है। महोत्सव चम्पारण की संस्कृति, कला, परम्पराओं की प्रतिनिधि गातिविधियाँ अपनी समृद्ध ऐतिहासिक गाथाओं को बयान करता है। साथ की वहाँ के जन-जीवन में एक नए सकारात्मक ऊर्जा को संचारित करता है। समता-समानता, व्यक्ति की स्वतंत्रता, उसकी गरीमा-प्रतिष्ठा सहज प्रवाह में अभिव्यक्त होती है। जन मानस में अपने होने का एहसास, अपने अतीत का गौरव एक नए सुनहरे भविष्य की ओर प्रेरित करता है। मन कह उठता है कि यह तीन दिन ही क्यों पूरा जीवन महोत्सव हो जाए। महा उत्सव हो जाए। एक महान उत्सव हो जाए अपरिसीम आनन्द में जन-जीवन मग्न हो जाए मन का अतिरेक, मन का उल्लास तरंगित हो जाए अपरिसीम जीवन थोड़ी ऊर्जा, जीजिविषा एकत्रित कर लें। वस्तुतः उत्सव का प्रादुभाव श्रम से थके मन की वजह से है। दुख से कातर मन आन्द की खोज में संलग्न हो जाता है। वैसे मावन मन एक आनद की प्राप्ति के लिए ही सब जतन करता है और यही कारण है ऋतुओं के परिवर्तन पर जब शरीर का रसायन

बदलता है तो ऋतु की करवटें उत्सव बन जाती है। जब कृषि उत्पाद की प्राप्ति होती है तब तब उत्सव का आयोजन किसी न किसी पर्व त्योहार के रूप में होता है।

अंधेरी काली रात में हम दीप जलाकर दीपावली उत्सव मनाते है। हम आनन्द की प्राप्ति के अवसर खोजते हैं। जिन्दगी और खुशहाली के क्षण को संजोते है। इसी क्रम में हम अपनी समृद्ध ऐतिहासिक स्थलो, घटनाओं की गौरव गाथा से अभिभूत होकर चम्पारण महोत्सव का आयोजन करते है।

बिहार के गौरव को अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री नीतीश कुमार ने बिहार महोत्सव का आयोजन दिल्ली, इलाहाबाद, जयपुर में किया। अन्य प्रदेशों में आयोजन का लक्ष्य भी रखा। राज्य के अन्दर भी स्थानीय महत्व की घटनाओं, स्थलों, रीति रिवाजों, कला संस्कृति, गौरवशाली कृत्यों को रेखांकित करते हुए क्षेत्र विशेष के महोत्सव के आयोजन की परम्परा की शुरुआत की गई। इन्ही परम्परा में चम्पारण महोत्सव एक ऐसा महोत्सव है, जो हमारी आजादी की संघर्ष गाथा को बयान करती है। अपनी आजादी बनाए रखने की प्रेरणा देती है। महान सम्राट अशोक के वैभवशाली राजनैतिक हस्तक्षेप का पाठ पढाता है। राष्ट्र की एकता-अखंडता को बरकरार रखने का जज्बा देता है। बुद्ध के मध्यम मार्ग पर चलने तथा जीवन को संतुलित बनाने की प्रेरणा देता है। केसरिया राष्ट्रीय महत्व का पुरातात्विक स्थल है। इसके सतह पर राजनीति का पराक्रम अशोक की लाट के रूप विराजमान है तो बोधिसत्व की करूणा इसके कण कण और वातावरण में व्याप्त है। यह बापू की कर्मभूमि है सत्य अहिंसा के प्रणेता के रूप में सम्पूर्ण राष्ट्र को बापू के सत्याग्रह की याद दिलाता है। इस महोत्सव के माध्यम से नयी ऊर्जा सहित कुछ नया करने का जज्बा हासिल होता है। ●

(लेखक : रचनाकार एवं दीपायतन संस्था में कार्यरत हैं।)

वाणावर महोत्सव : एक झांकी

❑ मुकेश नंदन वर्मा

23 नवम्बर 2013। यह दिन ऐतिहासिक धरोहर वाणावर के इतिहास में एक नया अध्याय जोड गया। गुमनामी रूपी वर्फ की जमी मोटी परत पिघल चुकी थी और एक नया सवेरा का आगाज हो गया था। गागर में सागर को चरितार्थ करता इस ऐतिहासिक धरोहर को पर्यटन के अन्तर्राष्टीय फलक पर स्थापित करने की कवायद शुरू हुयी। माध्यम बना राज्य पर्यटन विभाग द्वारा आयोजित वाणावर महोत्सव। राज्य के तत्कालीन मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के प्रयास का ही नतीजा रहा कि वाणावर महोत्सव की वर्षों पुरानी मांग की ओर सरकार का ध्यान गया। महोत्सव के माध्यम से ऐतिहासिक और पुरातात्विक धरोहर को प्रसिद्ध मिली। खूब प्रचार-प्रसार हुआ। महोत्सव तो दो दिनों तक ही चला लेकिन महीनों चले प्रचार-प्रसार का नतीजा रहा कि बोधगया और राजगीर आने वाले पर्यटकों का ध्यान

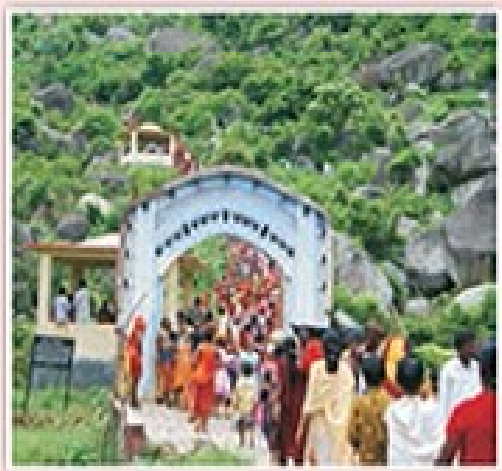

इस ओर गया। सही मायने में इसके बाद से ही विदेशी पर्यटकों के यहां आने का सिलसिला शुरू हुआ। इसके पूर्व इक्का-दुक्का ही पर्यटक कभी-कभी यहाँ आ जाया करते थे।

राज्य पर्यटन विभाग द्वारा दूसरी वार पिछले वर्ष अक्टूबर महीने में एक दिवसीय वाणावार महोत्सव का आयोजन किया गया। इसके विकास हेतु सांस्कृतिक कार्यक्रम का भी आयोजन किया गया, जिसमें मुम्बई के कई नामचीन कलाकारों ने लोगों का खूब मनोरंजन किया। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि पर्यटन के मानचित्र पर जहानाबाद जिले का गौरवशाली अतीत हैं। जिला मुख्यालय से करीब पचीस किलोमीटर दक्षिण-पूरब में स्थित वाणावर, जिसे इतिहास में बराबर के नाम से भी जाना जाता है, प्राचीन मगध साम्राज्य के गौरवमयी विरासत का ही एक प्रतीक स्वरूप है। यहाँ की गुफाएँ, मूर्तियाँ एवं भित्तिचित्र प्राचीन वास्तुकला की अमूल्य धरोहर हैं। यहीं से गुफा निमार्ण की वह अदभुत कला आरंभ हुयी, जिस पर भारत वर्ष का इतिहास आज भी गौरवान्वित है। वाणावर पहाडी समूह में प्रमुख रूप से वाणावर एवं नागार्जूनी पहाड़ियाँ सम्मिलित हैं।

वैसे तो इन पहाड़ी समूह में मूर्तिशिल्प , भित्तिचित्र एवं ललितकला के नायाब नमूने मिलते हैं, पर इस पहाड़ी समूह का सर्वप्रमुख आकर्षण यहाँ की गुफाएँ हैं। ग्रेनाइट की शैलों में आज से लगभग ढाई हजार साल पहले ये गुफाएँ बनायी गयी थी। फिर भी इनका अलंकरण एवं उच्च कोटि की पॉलिस इसके बिलकुल नवीन होने का एहसास दिलाते हैं। इन गुफाओं को भारतीय वास्तुकला की उन गरिमामयी परंपरा का प्रारंभ बिन्दू माना जाता है, जिसका पल्लवित रूप उदयगिरी, खण्डगिरी, अजंता एवं एलोरा की गुफाओं में मिलता है।

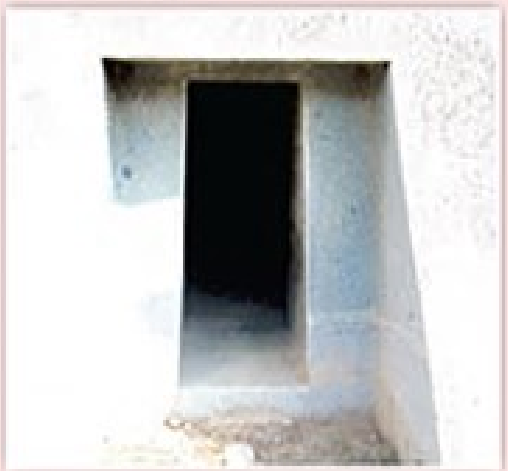

पुरातात्विक स्रोतों के आधार पर इस पहाड़ी समूह का काल 1500 ईसा पूर्व के करीब माना जाता है, पर ऐतिहासिक दृष्टि से इसका काल तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से मिलने लगता है। प्रसिद्ध लोमस ऋषि गुफा में उत्कीर्ण एक अभिलेख में इस पहाडी को गोरखगिरी कहा गया है, जिससे इसके महाभारत काल से भी संबंधित होने के संकेत मिलते हैं। वैसे तो वाणावर समूह की पहाड़ियों में काफी संख्या में शैलों को काटकर बनायी गयी गुफाऐं आज भी मौजूद हैं लेकिन जिन सात गुफाओं के कारण इसे विश्वव्यापी प्रसिद्धि मिली, उनमें से चार वाणावर पहाडी पर एवं तीन नागार्जुनी पहाड़ी पर स्थित है। वाणावर पहाडी की चार गुफाओं में लोमस ऋषि और सुदामा गुफा, भारत में चट्टानों को काटकर बनाए जानेवाली गुफाओं की वास्तुकला के सबसे आरम्भिक उदाहरण है। इनमें मौर्य काल में निर्मित वास्तुकला संबंधी विवरण मौजूद है और बाद की सदियों में यह महाराष्ट्र में पाए जानेवाले विशाल

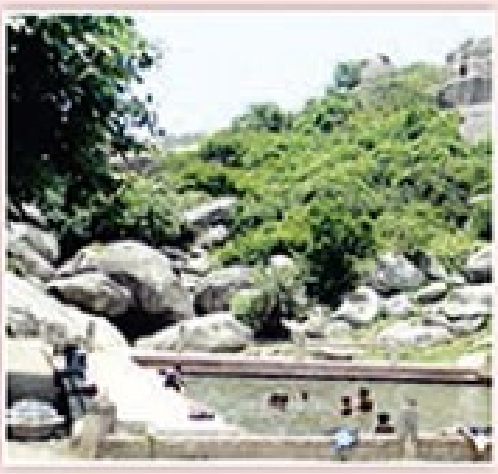

बौद्ध चैत्य की तरह एक चलन बन गया, जैसा कि अजंता और कार्ली गुफाओं में है, और इसने चट्टानों को काटकर बनायी गयी, दक्षिण एशियाई वास्तुकला की परंपराओं को काफी हद तक प्रभावित किया है। इन गुफाओं में उत्कीर्ण अभिलेख से पता चलता है कि मौर्य शासक अशोक एवं उनके पुत्र दशरथ ने इसका निर्माण कराया था। यद्धपि वे स्वयं बौद्ध थे लेकिन एक धार्मिक सहिष्णुता की नीति के तहत उन्होंने विभिन्न जैन-सम्प्रदायों को पनपने का अवसर दिया। इन गुफाओं का उपयोग आजीविका सम्प्रदाय के संन्यासियों द्वारा किया जाता था, जिनकी स्थापना मक्खाली गोशाला द्वारा की गयी थी। वाणावर पहाड़ी के शिखर पर स्थित बाबा सिद्धेश्वरनाथ का मंदिर भी ऐतिहासिक है। ऐसा माना जाता है कि महाभारत कालीन वाणासुर ने इसकी स्थापना करायी थीं।

सावन के महीने में यहां एक माह तक श्रावणी मेला लगता है, जिसमें लाखों की संख्या में लोग आते है। सिद्धेश्वरनाथ मंदिर के दक्षिण पतालगंगा नामक जलाशय है। इसके अतिरिक्त इन पहाड़ों पर कई दुर्लभ जड़ी-बुटी का केन्द्र भी है। यहाँ यह कहना गलत नहीं होगा कि वाणावर, इतिहास के विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों के लिए शोधकेन्द्र, पर्यटकों के लिए पर्यटन केन्द्र और श्रद्धालुओं के लिए आस्था का केन्द्र रहा है। इतिहास के बहुमूल्य क्षणों का गवाह यह स्थल पर्यटन के क्षेत्र में आज अपेक्षित मुकाम हासिल नही कर सका है। ढाई हजार साल पुराने इसके इतिहास को इस इक्कीसवीं सदी में भी पूर्ण विकसित नहीं किया जा सका है। लेकिन राज्य सरकार ने पिछले कुछ वर्षों में इस ऐतिहासिक स्थल के विकास की ठोस शुरूआत की है। इधर पिछले कुछ सालों से एक बार फिर वाणावर के विकास की बात होने लगी है। वाणावर थाना सहित पावर सब स्टेशन का निर्माण के अलावा सबसे बडी बात की रोपवे निर्माण की दिशा में कार्य किया जा रहा है। सड़कों का चौड़ीकरण और

स्ट्रीट लाईट लगाने की योजना भी है, जिसका शिलान्यास सीएम द्वारा किया गया है। दरअसल यहां पर्यटन सुविधा के विकास की शुरूआत मुख्य रूप से तब से ज्यादा असरकार हुआ, जब राज्य पर्यटन विभाग द्वारा यहाँ वाणावर महोत्सव की शुरुआत की गयी। इसके बाद से यहां विदेशी सैलानियों और बौद्ध उपासकों के आने का सिलसिला शुरू हुआ। राज्य के पर्यटन विभाग द्वारा 23 एवं 24 नवम्बर 2013 को दो दिवसीय वाणावर महोत्सव का आयोजन किया गया, जिसमें प्रसिद्ध पार्श्व गायक मो० अजीज और गायिका सपना अवस्थी ने कार्यक्रम प्रस्तुत किया। तब स्वंय राज्य सरकार के मंत्री के रूप में जीतन राम मांझी और श्री श्याम रजक महोत्सव में शरीक हुए थे। नामचीन कलाकारों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया और तब से यहाँ पर्यटन सुविधा के विकास की बात जोर पकड़ी। महोत्सव के जरीये इसका खूब प्रचार-प्रसार हुआ। नतीजा यह रहा कि विदेशी पर्यटक का ध्यान इस ओर गया और उनका यहाँ आने का सिलसिला शुरू हुआ। यहाँ श्रीलंका में हुए तमिल हमले में विकलांग हुए श्रीलंकाई सेना एवं लिट्टे के महिला कमांडर का एक शिस्टमंडल वाणावर के ऐतिहासिक महत्त्व को देखने यहाँ तक पहुँचे थे। 13 नवम्बर 2013 को देश के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की पुत्री उपिन्दर सिंह, जो दिल्ली विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग के प्राध्यापक भी हैं, अपने एक नीजी यात्रा के क्रम में वाणावर पहुँची तथा यहाँ की गुफाओं को देख काफी प्रभावित हुयी। इसके बाद वर्ष 2014 इस स्थल के विकास के लिए वरदान भरा वर्ष साबित हुआ। यहाँ आज पर्यटन सुविधा का विकास हो रहा है। यहाँ रोपवे निर्माण के लिए सर्वे का काम तीन बार हो चुका है। उम्मीद है कि जल्द ही इसपर कार्य शुरू होगा। राज्य सरकार का वाणावर महोत्सव कराने का निर्णय इस ऐतिहासिक स्थल के विकास का केन्द्र कहा जा सकता है। क्योंकि इसके बाद ही विदेशी पर्यटक विशेषतया इस स्थल से जुड़ सकेंगें। आज स्थिति यह है कि सर्दी में कड़ाके ठंड के बीच भी तीन चार माह तक विदेशी पर्यटकों और बौद्ध उपासकों से वाणावर का यह पहाड़ी इलाका गुलजार रहने लगा है। श्रीलंका, म्यांमार, अमेरिका, जापान, भूटान, सिक्किम, चीन आदि देशों से बौद्ध उपासक यहाँ आने लगे हैं। इसके अलावा देश एवं विदेशों के कई प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थानों से प्राध्यापक एवं छात्र तथा शोधार्थी शोध करने के लिए यहाँ आ रहे हैं। यहाँ निश्चित तौर पर राज्य सरकार और पर्यटन विभाग के प्रयास का ही नतीजा है कि आज वाणावर की चर्चा विदेशों में भी खूब हो रही है।●

(लेखक, रचनाकार एवं पत्रकार हैं।)

गुलाम सरवर की जयंती के अवसर पर दी गयी उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि

स्व० गुलाम सरवर की जयंती के अवसर पर श्री कृष्ण मेमोरियल हॉल में आयोजित राजकीय जयंती समारोह में मुख्यमंत्री सहित पूर्व राज्यसभा सदस्य डॉ० एम इजाज अली, आयुक्त पटना प्रमण्डल, श्री नर्मदेश्वर लाल, जिलाधिकारी, पटना श्री अभय कुमार सिंह के अलावा श्री शमशाद अली, श्री मुस्ताक आजाद, स्व० गुलाम सरवर की पुत्रियाँ श्रीमती मलका बानो एवं श्रीमती सितारा बानो सहित अनेकों गणमान्य व्यक्ति तथा सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं ने भी स्व0 गुलाम सरवर के चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित कर श्रद्धांजलि दी।

इस अवसर पर सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग के कलाकारों द्वारा आरती पूजन एवं भजन का गायन भी किया गया।●

तपःस्थली में प्रारंभ : तपोवन महोत्सव

❑ अशोक कुमार

प्राकृति का अनुपम उपहार के रूप में प्राप्त तपोवन का कुण्ड रोगहारी एवं अद्वितीय माना जाता है। तप्त जल कुंड में स्नान के उद्देश्य से आनेवाले देशी-विदेशी पर्यटकों की तादाद भी यहाँ अच्छी मिल जाती है। इस वर्ष से तपोवन में महोत्सव मनाने की शुरुआत की गई है। यह महोत्सव मकरसंक्रांति 14 जनवरी के अवसर पर आयोजित हुआ, जहाँ मुख्यमंत्री ने अपने कर कमलों से इस महोत्सव का शुभारंभ कर इसके विकास हेतु कई योजनाओं की आधारशिला रखी।

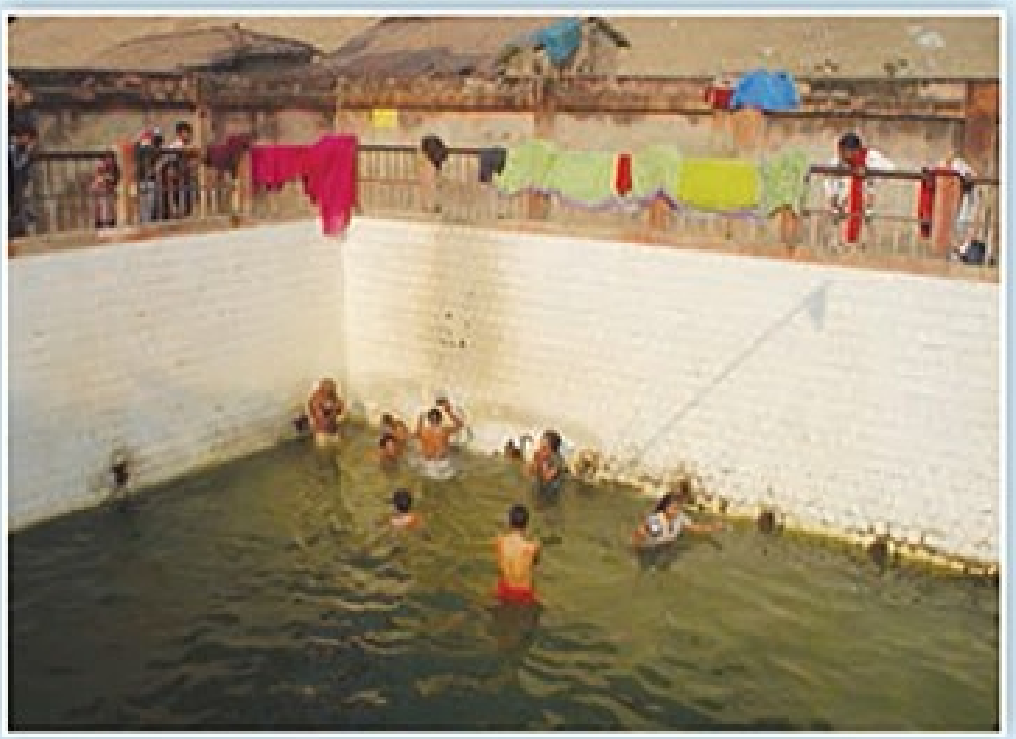

तपोवन का महात्म कई शास्त्रों एवं बौद्ध ग्रंथों में वर्णित है। यहाँ के तप्त कुंड में स्नान हेतु बड़ी भीड़ होती है। जाड़ा, गर्मी, बरसात तीनों मौसम में लोग स्नान करते हैं। कुंड का गर्म जल दवा-सा गुणकारी है। तपोवन में चार तप्त जल कुण्ड हैं, जो धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्व से परिपूर्ण है। मनोरम पहाड़ियों से आच्छादित तपोवन अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन केन्द्र है। इसके प्राचीन महत्व के बारे में कई कथ्य-तथ्य एवं मान्यताएं प्रचलित हैं। तपोवन में ब्रह्मा के चार पुत्र कठोर तप किये थे। उन पुत्रों में सनक, सनंदन, सनातन और सनत कुमार का नाम शामिल है। इन्हीं ऋषि पुत्रों के नाम पर चारों गर्म कुण्ड आज भी विद्यमान है। यह बुद्ध सर्किट मार्ग से जुड़ा हुआ है। इसकी महत्ता सन् 1942 के गया गजेटियर में हिस्टोरिकल पैलेस के रूप में वर्णित है। यहां 14 जनवरी मकर संक्रांति पर तीन दिवसीय मेला बहुत पहले से लगते रहा है। साथ ही तीन साल पर आयोजित होने वाला मलमास मेला भी आयोजित होता है, जो लगातार एक माह तक चलता है। कहा जाता है कि धर्म, कामना और मोक्ष तीनों का संगम स्थली है तपोवन। यह स्थल ऋषि-महर्षि की तप से सिंचित है। साथही आस्था, धर्म, कर्म का अनूठा संगम भी माना जाता है। निरंतर प्रवाहमान झरना अद्वितीय है। यहाँ एक अति प्राचीन शिव मंदिर भी है, जिसकी पूजा-अर्चना की जाती है। मान्यता है कि यहाँ की गर्म जलधारा में भगवान कृष्ण, प्रभु बुद्ध और ममतामयी माता रूक्कमिणी स्नान कर धन्य हुए थे। यहाँ देशी-विदेशी यात्री भ्रमण के लिए निरंतर आते-जाते हैं। हिन्दू, मुस्लिम, सीख, ईसाई, जैनी, पारसी, बौद्धिष्ट, तिब्बती धर्मावलंबी सभी यहाँ आते हैं। इसमें सर्व-धर्म समभाव की समानता समाहित है। यहां तप तो

दिखता है, परंतु वन समाप्त हो चुका है। यहाँ की ऐतिहासिकता को देखते हुए केन्द्रीय पर्यटन विभाग तथा राज्य पर्यटन विभाग तपोवन को दर्शनीय बनाने के लिए नई पहल की है। इस स्थल का विकास होने से पर्यटन को और भी बढ़ावा मिलेगा। विदित है कि गया के मोहड़ा प्रखंड में अवस्थित तपोवन राजगीर से महज 18 किमी की फासले पर गया जिला मुख्यालय से 40 किमी की दूरी पर टेटारू गांव के पास है। यहाँ पहुँचने के लिए सड़क मार्ग से छोटी-बड़ी वाहन उपलब्ध हो जाती है।

पौराणिक समय में तपोवन की भूमि यज्ञ, तप के लिए नामचीन रही है। ऐतिहासिक उल्लेख से स्पष्ट होता है कि तपोवन में निर्मित कश्यप ऋषि के आश्रम में तथागत प्रभु बुद्ध विश्राम कर तपस्या किये थे। वास्तव में धार्मिकता से ओत-प्रोत है तपोवन। इस भूमि को ऋषियों ने त्याग एवं तपस्या से उर्वर बनाया है। यहाँ एक प्राचीन कुआँ भी है। साथ ही यहाँ के गर्म कुंड के संदर्भ में वर्ष 1956 का एक रिपोर्ट भी आया था, जो सर्वे ऑफ इंडिया द्वारा कराया गया था। केमिकल एनालाइसिस के अनुसार तपोवन के तप्त जल में भी वे सब तत्त्व विद्यमान हैं, जो राजगीर के गर्म जल में है। इस तप्त जल में लिथियम, ताम्बा, चांदी और अकुआ मिश्रित है। इसकी महत्ता और प्राचीनता पर बुकानन ने भी विस्तार से प्रकाश डाला है। इतना हीं नहीं सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस ने 1931 में तपोवन के तप्त झरनों के पानी का वैज्ञानिक विश्लेषण किया था। चीनी यात्री हवेनसांग एवं फाहियान ने भी इसका विस्तार से वर्णन किया है। इसके साथ ही महाकवि माघ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक स्वप्नवस्यदतम् में तपोवन का रोचक वर्णन किया है। कुण्ड से निकला पानी का उपयोग खेतों के पटवन के लिए काफी उर्वर होता है। सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार तपोवन ब्रह्म कुण्ड से प्रति मिनट 25.5 लीटर तप्त जल निकलता है। वह स्थल एक किलो मीटर क्षेत्र में फैला है, जिसकी चौड़ाई एक फलांग है। गर्म जल कुण्ड 10 फीट का है। तप्त जल का लेबल पांच फीट है। वर्ष 1931 तथा 1952 के अन्वेषणोपरांत तपोवन तप्त जल का प्राप्त आंकड़ा इस तरह है।

तपोवन का गर्म जल 7.8 सेल्सियस गर्म, अलकलाइनिटी 3.6, क्लोराइड्स 0.8 तथा आयरन 0032 की मात्रा मौजूद है। उक्त आंकड़ा 24 अक्टूबर, 1952 में कोलकाता कारपोरेशन लेबोरेट्री से भी मान्य है। तीर्थ स्थल तपोभूमि तपोवन में बिम्बिसार काल में कश्यप ऋषि का आश्रम था। तपोवन में बुद्ध का पुत्र

राहुल ने भी तप साधना किया था। तप उपरान्त वह अपने अहंकार पर काबू पाया था। इसके अलावा अन्य कई प्रसंग भी जुड़े हुए हैं। चीनी यात्री हवेनसांग ने वैशाली से पैदल तीर्थ यात्रा की थी तो तपोवन में ही विश्राम किया था और इसी तप्त जल में स्नान कर बोधगया गये थे।

तपोवन के इन्हीं महत्व को लेकर 14 जनवरी 2015 को मकर संक्रांति के मौके पर यहां तपोवन महोत्सव का श्रीगणेश हुआ। प्राचीन पर्यटन स्थल तपोवन में तपोवन महोत्सव का उद्घाटन मुख्यमंत्री द्वारा किया गया। इस मौके पर तपोवन के विकास हेतु लगभग पाँच करोड़ रुपये की योजनाओं का उद्घाटन एवं शिलान्यास किया गया। आयोजित सभा को सम्बोधित करते हुए मुख्यमंत्री ने कहा कि हमारे नजर में दो महान आत्माओं का तपोवन स्थल रहा है। प्रथम भगवान बुद्ध जिनकी ख्याति पूरे विश्व के मानचित्र पर अमिट है, और दूसरे महान आत्मा पर्वत पुरुष दशरथ मांझी थे। तपोवन का समुचित विकास होगा। करीब 90 लाख की राशि से तपोवन का उत्थान एवं पूर्ण सौंदर्यीकरण किया जाएगा। यहाँ पर मुख्य द्वार, दुकानें, चहारदीवारी एवं पार्क का निर्माण भी किया जाएगा। इससे तपोवन क्षेत्र का विकास हो रहा

है। पर्यटन क्षेत्र के विकास में बिहार काफी तेजी से आगे बढ़ रहा है। आने वाले पर्यटकों को ट्रैफिक में असुविधा न हो, इसे देखते हुए यहां पर्यटक थाना भवन का निर्माण पर्यटकों की चिकित्सीय सुविधा हेतु 30 बेडों का अस्पताल तथा आने वाले पर्यटकों की सुरक्षा को देखते हुए पर्यटन थाना का निर्माण तपोवन में ही किया जाना है। पर्यटकों को यहां सभी प्रकार की सुविधायें मुहैया करायी जाएगी। तपोवन पर्वत श्रृखंला पुनः हरा-भरा बनेगा ऐसी कोशिश की जाएगी। 300 करोड़ की लागत से राजगीर के पास फिल्म सिटी का निर्माण होने जा रहा हैं। गया और तपोवन में भी फिल्म सिटी निर्माण की संभावना प्रबल है। इस वर्ष महोत्सव के मौके पर बॉलीवुड की महान पार्श्व गायिका अनुराधा पॉडवाल सहित बंद्रा, मुम्बई के कई कलाकारों ने भाग लिया। गया जिले के मोहड़ा प्रखंड के टेटारू ग्राम स्थित प्राचीन पर्यटन स्थल तपोवन में तीन दिवसीय मेला वर्षों से आयोजित होता आ रहा है। मकर संक्रांति मेला के मौके पर एक दिवसीय तपोवन महोत्सव का पहली बार शुभारंभ हुआ है, जिससे आमजनों में काफी उत्साह का माहौल दिख रहा है। इस महोत्सव में जिला प्रशासन सक्रिय एवं सराहनीय भूमिका अदा की। वाणावर महोत्सव के आयोजन से तपोवन के महत्व को चार-चांद लग गया हैं।●

(लेखक : पत्रकार रचनाकार है)

देव महोत्सव की परम्परा

❑ गोविन्द शर्मा

मगध में सदियों से सूर्य अराधना की परम्परा रही है। यही कारण है कि मगध क्षेत्र में सैकड़ो सूर्य मंदिर है।। ये सभी सूर्य मंदिर प्राचीनकाल में बने हैं। इतिहासकारों का मानना है कि मगध की परम्परा का अनुपालन करने के कारण देव के अन्य भागों में भी कुछ सूर्य मंदिर बने हैं। सूर्य अराधना की परम्परा आज भी छठ व्रत के रूप में विशेषकर मगध में प्रचलित है। ऐसा ही एक सूर्य मंदिर औरंगाबाद जिला के देव में स्थित है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह मंदिर आठवीं सदी का बना हुआ है। फिलहाल देव मंदिर की ऐतिहासिक महत्ता को देखते हुए यहाँ कार्तिक एवं चैत मास में छठ पर्व के अवसर पर भारी मेला लगता है। अब तो यहाँ 'देव महोत्सव' का आयोजन भी होता है।

औरंगाबाद जिला मुख्यालय से 16 किलोमीटर दूर देव प्रखंड है। यहीं है देव सूर्य मंदिर। देव का सूर्य मंदिर जितना पुराना है, उतना ही इसका अधिक महत्व भी है। हिन्दु धर्मावलम्बियों के लिए यह आस्था का महान केन्द्र है। खासकर छठव्रत में आस्था रखने वाले मगधवासियों के लिए इस सूर्य मंदिर का बहुत अधिक महत्त्व है। हर छठव्रती इसके प्रांगण में आकर छठ व्रत करने की कामना रखता है। यही कारण है कि छठ व्रत के मौके पर यहाँ भारी मेला लगता है। लोग अपनी मनोकामना लेकर यहाँ आते हैं और मनमें संतोष के साथ घर लौटते हैं। वर्ष 2005 से छठ व्रत के मौके पर जिला प्रशासन की ओर से देव महोत्सव का आयोजन भी होता है। ऐसे मोहत्सव राज्य सरकार की ओर से आयोजित किए जाते हैं। पर्यटन विभाग की ऐसे आयोजनों में विशेष भागीदारी होती है। ऐसे अवसर पर देव के विभिन्न हिस्सों से लोग ऐतिहासिक सूर्य मंदिर का दर्शन एवं आयोजित होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों का श्रवण करने की कामना लेकर आते हैं और संतुष्ट होकर लौटते हैं।

देव का सूर्य मंदिर :- सूर्य मंदिर एक बड़े जलकुण्ड के तट पर स्थित है। इस मंदिर में स्थापित सूर्य मूर्ति तीन रूपों में दिखाई पड़ती है। देव मंदिर में स्थापित सूर्य मूर्ति देवार्क के नाम से प्रसिद्ध है। देव मंदिर में स्थापति सूर्य प्रतिमा की दावाकृति ऐसी है मानो भक्तों के साथ वात्सल्य प्रेम प्रदर्शित कर रहे हों। जानकारों का मानना है कि भगवान सूर्य की ऐसी प्रतिमा अन्यत्र

कहीं नहीं है।

देव में निर्मित सूर्य मंदिर की बनावट भी अन्य सूर्य मंदिरों से भिन्न है। मंदिर पत्थरों के बड़े-बड़े खम्भों के सहारे निर्मित हैं। लगता है प्रत्येक चट्टान लोहे की कील से जुड़ा है। मंदिर का ऊपरी भाग बोध गया के बौद्ध मंदिर की शिखा शैली तथा जगन्नाथपुरी के मंदिर की तरह ही मेहरबदार बना है। यहाँ सूर्य की मूर्ति सात घोड़े वाले रथ पर सवार है। साथ ही पीछे सूर्य की अरूणाभ प्रस्फुटित हो रही है। सूर्य प्रतिमा के पाद मूल में तीन देव मूर्तियाँ दीवार से लगी हैं। बगल में, दीवार से लगी बड़ी गणेशा मूर्ति भी है। मंदिर के बगल में प्रसिद्ध सूर्यकुंड है। अनुमानतः यह सूर्यकुंड नवीं-दसवीं शताब्दी का बना है। लेकिन इस कुंड का बड़ा महत्त्व है। अभी तक यह प्रमाणित नहीं हो सका है कि इस सूर्य मंदिर को पहली बार किसने बनवाया था। हालांकि सदियों पहले यहाँ जंगल था, आबादी नहीं के बराबर थी। लेकिन मगध इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान डॉ० कृष्णनारायण प्रसाद 'मगध' का मानना है कि देवराज के पूर्वज पहले उमगा नामक स्थान पर रहते थे। उसी राज के बंवाज ऐयल नामक राजा एक बार शिकार खेलने की नियत से देव मंदिर के पास आये और वहां ठहरे। उन्हें पहले से ही कुष्ठ रोग था। राजा ने उसी देवकुंड में स्नान किया। इसके बाद उनका कुष्ठ रोग समाप्त हो गया। फिर क्या था ऐलय राजा ने सूर्यकुंड एवं देव के सूर्य मंदिर का नये सिरे से जीर्णोद्धार कराया। फिर उस राजा ने अपनी राजधानी सूर्य मंदिर के पास ही बसायी।

देव सूर्य मंदिर के विषय में आज भी यह किंवदंती मशहुर है कि जो कोई सच्चे मन से इस मंदिर में मनौती मांगने आता है। उसकी मानोकामना पुरी होती है। साथ ही आज भी यह मान्यता प्रचलित है कि देव सूर्यकुंड में स्थान करने से कुष्ठ रोग तो दूर होता ही है। अन्य चर्म रोगों से भी राहत मिलती है। इसी मान्यता को साकार करने की उद्देश्य से कार्तिक एवं चैत महीने में छठ व्रत के अवसर पर यहाँ भारी मेला लगता है। लोग सूर्य कुण्ड में स्नान करते हैं और कंचन काया की कामना करते हुए घर लौटते हैं। मंदिर की कुछ दूरी पर देव किला खंडहर आज भी है। उसकी खुदाई से देव सूर्य मंदिर के बारे में और नई जानकारियाँ मिल सकती हैं। देव सूर्य मंदिर मगध की धरोहर मानी जाती है। ऐसे मंदिरों से मगध के लोगों की धार्मिक मान्यताओं का पता भी चलता है।

देव महोत्सव का महत्त्व : सरकार ने मगध की सूर्य आराधना की प्राचीन परम्परा का सम्मान करते हुए मगध में स्थापित सूर्य मंदिरों पर ध्यान देना शुरू किया है। जहाँ लाखों लोग धार्मिक भावना से वर्ष में दो बार जमा होते हैं। वहाँ की अच्छी व्यवस्था सजग सरकार की पहचान है। यही कारण है कि राज्य सरकार पिछले कुछ वर्षों से देव महोत्सव का आयोजन कर रही है। इस महोत्सव में मगध क्षेत्र में हुए विकास का प्रदर्शन किया जाता है। विकास गोष्ठियाँ आयोजित होती हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि देव समारोह में मगध की सांस्कृतिक परम्परा का बहुत सुन्दर प्रदर्शन होता है। इससे देव समारोह में शामिल होने वाले लोगों को मगध की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक मान्यताओं का बोध होता है। कला एवं संस्कृति विभाग, पर्यटन विभाग, कृषि विभाग तथा सूचना एवं जन-सम्पर्क विभाग के स्टॉलों के साथ-साथ कलाकारों का उत्तम सांस्कृतिक प्रदर्शन भी यहाँ होता है। देव महोत्सव में भारत सरकार के गीत एवं नाटक प्रभाग के कलाकार भी आकर मनोरंजन के कार्यक्रम आयोजित करते हैं। जिस कारण मगध की गौरव-गरिमा मगध क्षेत्र से बाहर भी फैलती है। साथ ही नई पीढ़ी के लोग अपनी सांस्कृतिक पहचान से रू-ब-रू भी होते हैं। देशी-विदेशी पर्यटक क्षेत्र में आने की लालसा रखते हैं। सचमुच देव सूर्य मंदिर के कारण मगध का परचम पूरे देश ही नहीं, दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में आज भी लहरा रहा है। बौद्धयात्री मगध की मिट्टी को मस्तक पर लगाते हैं तथा मगध क्षेत्र में आयोजित उत्सव महोत्सवों को देख धन्य हो जाते हैं।●

(लेखक, पत्रकार एवं रचनाकार है)

इतिहास के आइने में वैशाली महोत्सव

❑ डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव

आगम-परवर्ती जैन ग्रन्थकार महावीर-कालीन वैशाली का नामोल्लेखपूर्वक वर्णन में प्रायः उदासीन हैं। यही कारण है कि महावीरचरित से संबंद्ध ग्रन्थों में वैशाली का नाम संकेत बहुत की कम हुआ है। वैशाली के स्थान में, वहाँ अवस्थित महावीर की जन्मस्थली कुण्डलपुर (कुण्डलपुर : क्षत्रियकुण्डग्राम) का या फिर विदेह-क्षेत्र का चित्रण उपलब्ध होता है। इसके विपरीत, बौद्धग्रन्थों में नामकीर्त्तनपूर्वक वैशाली की बहुत ही मनोरम सांस्कृतिक और ऐतिहासिक, साथ ही राजनीतिक झांकी प्रस्तुत की गई है, जिसमें बुद्ध और अम्बपाली की हृदयावर्जक कथा, प्रवति और निवृति, राग और विराग के अन्तर्द्वन्द्वकी नन्दतिक भावना से 'ततोअधिक ऊर्जस्वल होकर उभरी हैं। इस प्रकार वैशाली महावीर और बुद्ध दोनों महापुरुषों की समयुगीन संस्कृति की युगपत अभिव्यंजना करने वाली ऐतिहासिक नगरी के रूप में लब्धप्रतिष्ठ है। वैशाली में प्रथमतः गणतंत्र का अंकुरण भी हुआ था। हॉलाकि वैशाली महोत्सव का आयोजन विशेषतया जैन धर्म महावीर के प्रवर्तक पर ही पूर्णतया केन्द्रीत है।

आधुनिक युग में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति और महातीर्थ के गौरव से सम्पन्न वैशाली पुरायुग, अर्थात महावीर

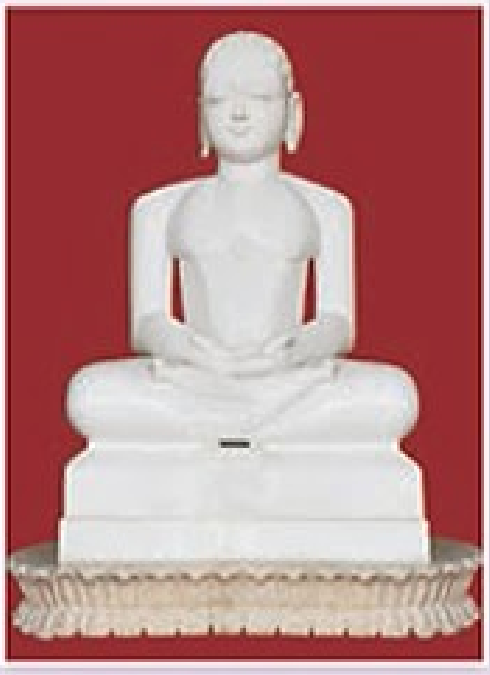

के युग में लिच्छवियों की राजधानी थी, साथ ही भारत के तत्कालीन सोलह महाजनपदों में शक्तिशाली गणतन्त्रात्मक वज्जिसंघ के शासनकेन्द्र के रूप में उसकी अनन्यता थी। खृष्टपूर्व पंचम-षष्ठ शती के जैनागमों में वैशाली की विशालता संकेतिति होती है। हिंसावादी एकान्तियों के लिए अहिंसावादी 'अनेकान्त' की जयपताका फहरानेवाले, पुरायेतना से संवलित वैशाली-विभूति महावीर को 'सूत्रकृतांग में 'वेसालिय' कहा गया है : एवं से उदाहु अनुत्तरमुणी अनुत्तरदंसी अणुत्तरणाणदंसणधरे अराहाणाअपुत्ते भगवं वेसालिए विआहिए त्ति बेमि।' इस प्रकार, वैशाली-पुत्र महावीर स्वामी के लिए 'वसालिए' (सं: वैशालीक) विशेषण उत्तराध्ययन आदि विभिन्न जैनागमों में भी भूयशः आवृत हुआ है।

जैनकल्पसूत्र के अनुसार वैशाली विदेह जनपद की राजधानी थी, जिससे महावीरस्वामी का घनिष्ठ संबंध था। इस ग्रन्थ के अनुसार, महावीर विदेहवासी थे और उनकी माता का नाम विदेहदत्ता था। उन्होंने अपने बहुमुल्य जीवन के तीस वर्ष वैशाली में व्यतीत किये थे। पन्द्रहवीं शती के जैन आचार्य भट्टारक सकलकीर्ति ने संस्कृत में निबद्ध 'वीरवर्द्धमानचरित' के सप्तक 'अधिकार' के प्रारम्भ में महावरी-कालीन विदेह और वहाँ के कुण्डपुर नगर का विपुल सांस्कृतिक चित्र उपन्यस्त किया है। तदनुसार, तत्कालीन भारतवर्ष के विशाल प्रदेशों के नाम से भी विख्यात था, जिसकी महिमा अविमुक्त क्षेत्र काशी के समानान्तर थी। उक्त प्रदेश या क्षेत्र 'विदेह' नामक इसलिए भी सार्थक था कि वहीं के निवासी श्रमण मुनि अपने शुद्ध चारित्र से देह-रहित (मुक्त) हो जाते थे।

विदेहभूमि की अपनी विशेषता थी कि वहाँ के निवासियों में अनेक मनुष्य सदाचार और विशुद्ध भावनाओं से तीर्थंकर नाम-कर्म को अर्जित करने की क्षमता आयत करते थे और अनेक मनुष्य पंचोतर विमानों में अहमिन्द्रत्व प्राप्त करने की शक्ति से सम्पन्न होते

थे। कतिपय भव्य जीव, सत्यात्रों के लिए उत्तम भक्ति के साथ दान करके योगभूमि अर्जित करते थे और कुछ लोग जिनपूजन के प्रभाव से इन्द्रत्व को प्राप्त कर लेते थे। उस विदेह-क्षेत्र में देव, मनुष्य और विद्याधरों से वन्दनीय तीर्थंकारों और सामान्य केवलियों की निर्वाण, भूमियाँ पदे-पदे दृष्टिगोचर होती थी। वहाँ के वन-पर्वत आदि ध्यानवस्थित योगियों द्वारा निरन्तर आसेवित थे और नगर, ग्राम आदि ऊँचे-ऊँचे जिन मन्दिरों से सुशोभित रहते थे। केवल ज्ञानी भगवान और गणधर धर्म-प्रवृति के निमित चारों संघों के साथ वहाँ तपोविहार किया करते थे।

इस प्रकार के धार्मिक तथा औत्सविक वातावरण से समलंकृत उस विदेह भूमि अर्थात वैशाली के नाभितुल्य मध्य भाग में अयोध्यानगरी के समान, कुण्डपुर नाम का महानगर विराजित था। सुरक्षा की दृष्टि से वह महानगर ऊँचे-ऊँचे गोपुरों और गहरी खाईयों से घिरा था। फलतः वह शत्रुओं के लिए दुर्लध्य था। वहाँ से स्वर्ण के देवता तीर्थयात्रा करने तथा केवलियों और तीर्थकरों के पंचकल्याणक महोत्सव मनाने के निमित बराबर समारोह की सघन सुषमा से नित्य नवीन और परम रमणीय बनी रहती थी।

उस विशाल नगर के सोने और रत्नों से निर्मित उत्तम जिनालय अपनी पवित्र आभा बिखेरते थे। ज्ञानियों से सुसेवित वह महानगर अद्‌भुत धर्मसमुद्र की भाँति प्रतीत होता था। उन जिनलयों में बराबर जयजयकार गुँजता रहता था और स्तोत्र, गीत, नृत्य, वाद्य आदि की मनमोहक स्वरमाधुरी अनुध्वनित रहती थी। जिनालयों की दिव्य मणिमय जिन-प्रतिमाएँ दिव्य सुवर्णों के उपकरणों और अलंकरणों से दीप्त रहती थी। पूजन के लिए आनेवाले दम्पति अपने उत्कृष्ट गुणों और दिव्य रूपों से देवयुगल के समान सुशोभित होते थे।

उस कुण्डपुर में बुद्धिमान तथा भक्तिभावपूर्वक किमिच्छित दान करने वाले पुरुष नित्य अपने घर के द्वार पर अतिथियों को प्रतीक्षा करते रहते थे। मुनियों को पारण करानेवाले गृहस्थों के घर से निरन्तर पंचदिव्य की दृष्टि (अहो दानं की ध्वनि और दुन्दुभि के स्वर के साथ फूल, वस्त्र और रत्न की वर्षा) होती रहती थी, जिसे देखकर दूसरे लोगों को भी दान करने की प्रेरणा मिलती रहती थी। जहाँ ऊँचे-ऊँचे गगनचुम्बी प्रसाद अपनी ध्वजा के हाथों से देवेन्द्रों का आह्वान करते-से प्रतीत होते थे। जहाँ के भवनों में रहनेवाले मनुष्य दाता, धार्मिक, शूर-वीर तथा व्रत-शील-गुणों के धारक होते थे। ये देव-गुरुओं की भक्ति, सेवा और पूजा में लगे रहते थे। वहाँ के निवासी नीतिमार्ग में चतुर, लोक-परलोक के हित-साधन में उद्यत, धर्मात्मा, सदाचारी, धनी, और सुखी और ज्ञानी थे। वहाँ के दिव्य रुप-गुणवाले पुरुष और उनके समान ही दिव्य रुप-गुणवाले स्त्रियाँ देव-देवियों के समान प्रतीत होते थे। इस प्रकार, वह कुण्डपुर तत्कालीन भारतीय सांस्कृति चेतना की परमाव्रत स्थिति का परिचायक था।

बारहवीं शती के गुणचन्द्रगणी-विरंचित प्राकृत के निबद्ध महावीर चरियं या वीरजिणचीरयं (सं० 'महावीरचरित') के सातवें 'प्रस्ताव' में वैशाली का नामोल्लेखपूर्वक वर्णन मिलता है। महावीर स्वामी तपोविहार के क्रम में जिस समय वैशाली नगरी लौटे थे, उस समय वहाँ शंख नाम का गणराजा राज्य करता था: 'सो महावीरजिण्वरो कमेण विहरमाणो वेसलिं नयरि संपत्तो, तत्थय... संखो नाम गणराया।' राजा शंख ने महावीर स्वामी का बड़े ठाट-बाट से स्वागत-सत्कार किया था। महावीर स्वामी वहाँ से पुनः वैशाली के पार्श्ववर्ती वाणिज्य-ग्राम नगर (आधुनिक 'बनियागाँव) में भी पधारे थे। उस समय वैशाली और वाणिज्यग्राम के बीच अतिशय गहरे जलवाली गण्डकी नदी बहती थी और उसमे नावें चलती थीं नाविक नौकायात्रियों से खेवा लेकर ही उन्हें पार उतारते थे। निर्ग्रन्थ महावीर स्वामी भी जब नाव से पार उतरे थे, तब नाविकों ने खेवा के लिए उन्हें रोक लिया था, फलतः महावीर स्वामी को कड़ी धूप में नरम बालू पर बहुत देर तक खड़ा रहना पड़ा था। बाद में शंखराजा का भगिना 'चित्त' ने उन्हें नाविकों से मुक्त किया था।

भगवान महावीर ने वाणिज्यग्राम के बहिर्भाग में जहाँ तपोविहार किया था, वह स्थान से वनखण्ड से मण्डित था, जिसमें छहों ऋतुएँ क्रम-क्रम से अपने सौन्दर्य-वैभव बिखेरती थी। वनपादपों में आम्रवृक्षों की प्रधानता थी। सप्तवर्ण कंकोल, सरलकाष्ठ और सल्लकी के पेड़ों की बहुलता थी। उस वनखण्ड में हिरन चौकड़ी भरते रहते थे और मदमत्त हाथी झूमते चलते थे। पक्षियों में पपीहों, नीलकण्ठ और कोयलों की मनोमुग्धकर स्वरमाधुरी मुखरित रहती थी। उस जनपद के निवासी जाड़े के दिनों में ठण्ड से सिकुड़ते शरीर में गरमाहट लाने के लिए जगह-जगह 'घूर' (अग्निपूंज) जलाकर उसके इर्दगिर्द जमे रहते थे। महावीर स्वामी जब वाणिज्यग्राम नगर के अन्तर्भाग में पहुँचे तब वहाँ 'आनन्द' नाम के तपोनिरत श्रावक ने उनके दर्शन से केवल ज्ञान प्राप्त किया था। इस प्रकार प्रस्तुत 'महावीरचरित' में भी महावीर-कालीन वैशाली की धार्मिक, प्राकृतिक तथा जानपद जीवन की स्थिति का सुरम्य चित्र प्रतिबिम्बित हुआ है।

आचार्य विबुध श्रीधर (बारहवीं शती) द्वारा अपभ्रंश में निबद्ध 'वड्ढमाणचरिउ' से भी महावीर-कालीन वैशाली के उदात्त रूप के दर्शन होते हैं। विदेह देश की तत्कालीन वैशाली के उपकुण्ड में अवस्थित कुण्डपुर नाम के नगर का कलावरेण्य चित्रण करते हुए अपभ्रंश कवि विबुध श्रीधर ने लिखा है:

णिवसइ विदेहुणामेण देसु।
खसरामरेहिं सुहयर पएसु।।
सुपसिद्ध धम्मिय-लोय-चारु।
णिय-सरल मणोहर कंति-सारु।
पुंजी किउ णाहूँ धरित्तियाए।
मुणिवर-पय-पंकज-भत्तियाए।
सिय-गोमंडल जणियाणुराय।
सुणिसण्ण मयंकिय मज्झभाय।।
जहिं जणमणरा विणिअडड़ भाई।
सामन्न निसागर-मुत्ति णाईं।।
तहिं णिवसइ कुंडपुरहिहाणुं।
पुरुधय-चाय-झंपिय-तिव्व भाणु।।

अर्थात् (उसी भारतवर्ष में) विद्याधरों और अमरोंसे सुशोभित प्रदेशवाला विदेह नामक सुप्रसिद्ध देश है, जहाँ सच्चरित्र और धार्मिक लोग निवास करते हैं। वह देश अपनी समस्त मनोहर कान्ति का सार ही है। यहाँ की धरती पर मानों श्रेष्ठ मुनियों के पद-पंकज की भक्ति पुंजिभूत हो गई है। वहाँ धवल वर्ण की गायों का झुण्ड मन में अनुराग उत्पन्न करता है और बीच-बीच का मृगों से वहाँ की भूमि भव्य बनी रहती है। वह देश अपनी शोभा और साधुता से चन्द्रमूर्ति की तरह प्रतीत होता है, जहाँ जनमन सौन्दर्य के आस्वाद के लोभ सतत मँड़लाता रहता है।..... उसी विदेह देश में कुण्डपुर नाम का नगर है, जहाँ की अट्टालिकाओं पर फहरानेवाली ध्वजाएँ तीखे तेजवाले सूरज को भी ढ़क लेती है।

निश्चय ही, उपर्युक्त वर्णन से कुण्डपुर के आश्रमोपम चाक्षुष बिम्ब का भव्यतम उद्भावन होता है। उक्त ग्रन्थकार द्वारा किये गये आगे के वर्णनों से कुण्डपुरके प्राकृतिक वैभव और स्थापत्य की उत्कृष्टता का मनोरक

निदर्शन प्राप्त होता है : वह कुण्डपुर पद्मपूरित जलाशयों से सुशोभित था। वहाँ की उत्कृष्टता का मनोरम निदर्शन प्राप्त होता है : वह कुण्डपुर पद्मपूरित जलाशयों से सुशोभित था। वहाँ की कृषि-सम्पदा स्पृहणीय थी। मणिरत्नाखचित और ध्वजमण्डित गगनस्पर्शी विमानों-प्रासादों, गम्भीर खाइयों और उन्नत परकोटों से विभूषित कुण्डपुर अतिशय विशाल प्रतीत होता था। वहाँ की कामिनियों के आभूषणों की छटा रात्रि में दीपकों की ज्योति को निष्प्रभ कर देती थी और उनके लावण्य-ललित मुखचन्द्र से चन्द्रमा भी मालिन पड़ जाता था। इस प्रकार 'वहुमाणचरिउ' से भी स्पष्ट है कि महावीर के समय की वैशाली भारतवर्ष के समृद्धतम महानगरियों में अद्वितीय थी।

कहना न होगा कि उक्त प्रकार के और भी अनेक धार्मिक-पौराणिक जैनाग्रन्थों में महावीर-कालीन वैशाली की वैभव-दिप्ति के संबंध में महत्त्वपूर्ण विवरण मिलते हैं। तदनुसार, वैशाली-स्थित कुण्डपुर नगर की चर्चा इन्द्रलोक में भी होती थी। वैशाली की भूमि उपवन, कानन, कुँजवन, नदी सरोवर आदि की प्राकृतिक दिव्यता, भवन, प्राकार, प्राचीर, परिखा, ध्वज, तोरण आदि की वास्तुगत भव्यता तथा धन-धान्य, पशुधन आदि की अपारता के साथ ही बहत्तर कलाओं में निपुण रुपवान नागरिकों की धर्मप्रभावना की प्रकर्षता आदि की दृष्टि से देवलोक की क्षमता रखती थी, इसलिए वह तीर्थंकर महावीर की जनभूमि के उपयुक्त थी।

चौदहवीं सदी के जिनप्रभ सूरि द्वारा रचित 'विविधतीर्थकल्प' के शत्रुजयतीर्थकल्प' में कुण्डग्राम या कुण्डपुर की तीर्थोपमता को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि वहाँ की यात्रा से सौगुना फल होता है। मूल श्लोक इस प्रकार है :

अयोध्या-मिथिला-चम्पा-काकन्दी-हस्तिना नापुरे।
कौशाम्बी-काशि-कायन्दी-काम्पिल्ये भद्दिलाभिधे।
रत्नावाहे-शौर्यपुरे कुण्डग्रामेऽप्यपापया।
चन्द्रानना-सिंहपुरे तथा राजगृहे पुरे।।
श्रीरंवतक-सम्मेत-वैभारा-ऽष्टपदाद्रिषु।
यात्रयास्मिंस्तीर्थेषु यात्राफलाच्छातगुणं फलम्।।

इससे स्पष्ट है कि जैनों की दृष्टि में वैशाली का एक महिमाशाली तीर्थ के रूप में अधिक मूल्य था। किन्तु बौद्ध वाङ्मय में वैशाली का राजनीतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से भी मूल्यांकन किया गया है और इस संबंध में पालि-साहित्य में विस्तृत विवरण भी उपलब्ध होता है। इससे सहज ही यह प्रतीत होता है, बुद्ध के एक धर्मनेता के रूप में वैशाली पहुँचने पर महावीर का विशुद्ध धार्मिक महात्म्य या प्रभाव मन्द ही नहीं पड़ गया, अपितु मगध (राजगृह) से आयातित राजनीति का कूटनीति के उपलेप के कारण वह जनदृष्टि से ओझल भी हो गया। यही कारण है कि परवर्ती जैन ग्रन्थकार अपने वर्णन में वैशाली को गौण स्थान देने लगे और कुण्डपुर या क्षत्रियकुण्डग्राम को उन्होंने अधिक प्रमुखता दी। ईसा की तृतीया चतुर्थ शती के युगान्तरकारी (प्राकृत-कथाकार) आचार्य संघदास गणी ने तो अपनी कूटस्थ कथाकृति वसुदेवहिण्डी में बिहार के जनपदों में मगध, मिथिला और चम्पा का साग्रह वर्णन किया है, किन्तु वैशाली या कुण्डपुर या फिर लिच्छवि या विज्जिसंघ का यत्किंचित भी उल्लेख नहीं किया है।

प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में इस बात की बार-बार चर्चा आई है कि वैशाली के महावीर-कालीन वज्जिसंघ के लिच्छवि-सदस्य इतने पराक्रमी थे कि वे अपने शत्रुओं को तुच्छ समझते थे। वे नियमित रूप से गणराज्य की महासभा में सम्मिलित होते, विचार-विमर्श करते तथा संघ-नियमों का दृढ़ता से पालन करते थे। वज्जिसंघ के सदस्यों की यह एकसूत्रता मगध-सामाज्य के लिए ईष्या का कारण थी, यह बात बुद्ध और उसके प्रधान शिष्य आनन्द के सुप्रसिद्ध पारस्परिक संलाप के माध्यम से भी स्पष्ट होती है। (द्र० दिर्घनिकाय : महापरिनिर्वाण सूत्र) कालीन वैशाली के लिच्छवि उत्तरपूर्व भारत की महाबलशाली, सुशिक्षित, संपन्न और कलाप्रेमी क्षत्रिय जाति थे। तभी तो उन्होंने विदेह क्षेत्र की ग्राम सुन्दरियों की कला-प्रतियोगिता के माध्यम से अम्बपाली को निर्वाचित कर उसे वैशाली की नगरवधू या राजनर्तकी के पद पर प्रतिष्ठित किया था।●

(लेखक : विद्वान रचनाकार एवं अनेक पुस्तकों के रचनाकार हैं।)

इतिहास व संस्कृति का संगम : उत्सव-महोत्सव

❑ डॉ० रामबदन बरूआ

बिहार का इतिहास और उसकी परंपराएँ मानव-सभ्यता के उषाकाल से प्रारंभ होती हैं। रामायण, उपनिषद् महाभारत और पुराणों में भी यहाँ के प्राचीन समृद्ध राज्यों यथा : विदेह, वैशाली, अंग एवं मगध की बात स्वीकार की गई है।

बिहारी संस्कृति के बारे में कहा जाता है कि यहाँ की संस्कृति समाज में पाई जाने वाली उच्चतम मूल्यों की वह चेतना है, जो सामाजिक प्रथाओं, व्यक्ति की चित्त-वृत्तियों, सद्-भावनाओं एवं आचार-व्यवहार से जुड़ी हुई है। अलबत्ता यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि संस्कृति प्याज के छिलके की तरह है, जिसके परत-दर-परत में महत्त्व संरक्षित हैं।

बिहार का गौरवशाली इतिहास जितना पुराना है उतनी ही इसकी

संस्कृति भी समृद्ध है। नालंदा, वैशाली, पावापुरी, मगध, मिथिला, अंग, भोजपुर आदि सभी क्षेत्रों की अपनी अलग-अलग संस्कृतिक पहचान है।

दरअसल बिहार की भूमि बौद्ध, जैन, सिक्ख, हिन्दू एवं सूफी धर्मों के लिए भी पावन मानी जाती रही है। यहीं की वैशाली से गणतंत्र का किसलय पल्लवित-पुष्पित हुआ था, यहीं, यहीं के गया में महात्मा बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। यहाँ के तपी व दर्शनशास्त्रियों का ज्ञान जहाँ सम्पूर्ण विश्व-समुदाय को आलोकित किया था, यहीं सूफी संतों की वाणी ने माधुर्य व मिल्लत की रसधार बहायी थी, जिसका प्रमाण पग-पग यहां के पर्व-त्योहारों एवं धरोहरों से लेकर कण-कण में आज भी देखने को मिल जाता है। यहाँ के कवियों ने भी अपने पद-लालित्य से विविध विपुल और अमूल्य साहित्य का विस्तार कर मानव जीवन-दर्शन तथा सर्वधर्म समन्वय की ज्योति जलायी थी, यहीं यहाँ की लोकगाथा एवं लोक आस्था का उत्साह आज भी धूमकेतु की तरह प्रकाशमान है।

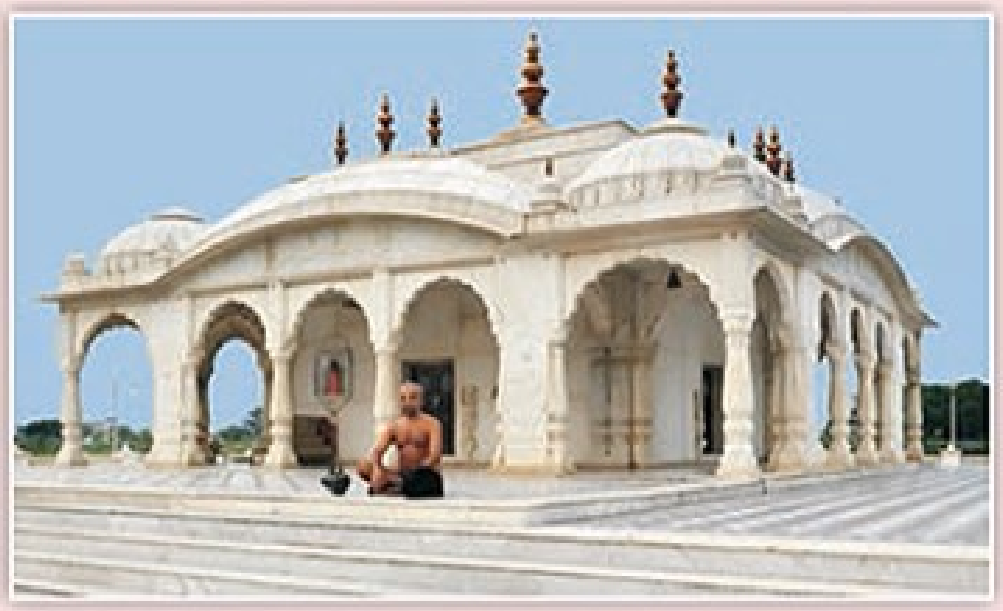

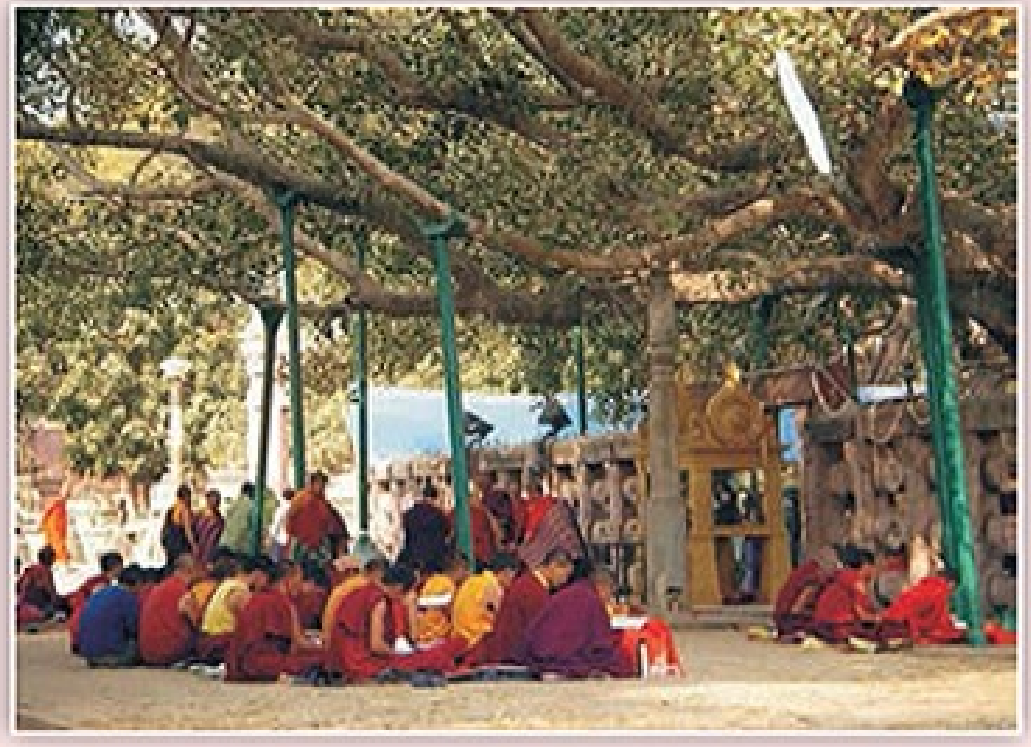

बहरहाल कहा जा सकता है कि ज्ञान-विज्ञान, कला- संगीत, साहित्य-संस्कृति शायद ही ऐसा कोई क्षेत्र हो, जिसमें बिहार ने अपनी अलग पहचान न बनाई हो। अलबत्ता यहाँ की लोक-संस्कृति भी विलक्षण एवं अनूठी है। यहाँ की जीवन-शैली, आस्था से जुड़े पर्व-त्योहार, सदाबहार लोकगीत एवं लोकसंगीत और लोककथा सब के सब में सोंधी-सोंधी गंध और अलग-अलग चटख रंग एक साथ देखने को मिल जाता है।

बिहार के लोगों की अपनी अलग पहचान है, शायद इसीलिए यहाँ आयोजित होने वाले उत्सव-महोत्सवों को भी अपने रंग में मनाने की परंपरा रही है। हालाँकि कालक्रम में यह व्यवस्था शिथिल-सी हो गयी थी, किन्तु वर्ष 2005 के उपरांत राज्य सरकार के प्रोत्साहन व शासन-प्रशासन की मुस्तैदी, शांति-व्यवस्था का मौहाल तथा मिल रहे प्रोत्साहन के फलस्वरूप इसे काफी बल मिला है। आज यह राज्य के विविध क्षेत्रों में भव्यता के साथ मनाया जा रहा है, जो सम्पूर्ण बिहारी संस्कृति की झलक प्रस्तुत करता है। चाहे वह बिहार दिवस की बात हो या फिर अन्य उत्सव महोत्सवों की।

'महा' और 'उत्सव' दो शब्दों के मेल से बना महोत्सव का शाब्दिक अर्थ बड़ा उत्सव और आयोजन से जोड़कर देखा जाता है। महोत्सव मूलतया आनंदातिरेक एवं हर्ष-उल्लास का प्रतीक और सूचक है। उत्सव का शाब्दिक अर्थ आनंद, प्रसन्नता, आनंदजनक कार्य, जलसा, उधाव-बधाव होता है, जिसकी तह में उत्साह दूध की पानी की तरह घुला-मिला रहता है। उत्साह का शाब्दिक अर्थ हौसला, उमंग, चेष्टा सहित शक्ति से सिद्ध होने वाला कार्य का बोध होता है। महोत्सव में यही अर्थशक्ति जुड़कर

चीनी की चासनी की मिठास पैदा करती है। महोत्सवों का आयोजन राज्य के बाहर और भीतर किसी मनीषी या गौरवमय ऐतिहासिक स्थलों के नाम पर आयोजित होता रहा है। इसके मूल में सकारात्मक सोच के साथ-साथ एक ऊर्जा का ऐसा अक्षय भंडार संरक्षित रहता है, जो मानव-मन को तरोजाता य तनाव मुक्त करने का मुख्य साधन भी होता है। ऋतु परिवर्तन के उपरांत मानव मन में जब कलात्मकता उत्पन्न होती है तो वह उत्सव-महोत्सव के दीर्घकाय रूप को धारण करती है और फूट पड़ता है, जन-मानस के अन्तःकरण से रस रंगों की धार, जो अपने तृप्त होते हुए समाज के लोगों की कुंठाओं को बहाकर दूर ले जाने में कामयाब हो जाता है। साथ ही भर देती है नई जिजीविषा और नई ऊर्जा जो रोज कुछ नया करने का संदेश सुनाती है। अपने इतिहास की याद दिलाती है और नई ललक भी पैदा करती है।

बिहार का इतिहास एवं यहाँ की कला-संस्कृति इतना समृद्ध एवं गौरवशाली है कि वह अपने आंचल में स्थानीय महत्त्व की कई घटनाओं, रीति-रिवाजों के गौरवशाली कृत्यों के कई तथ्य छुपाए हुए है। यहाँ के उत्सव-महोत्सव न सिर्फ नयनाभिराम एवं संवदेनशील आचार-व्यवहार की झलक दिखलाते हैं, वरन अपनी सांस्कृतिक पहचान के अलावा, कला, संगीत, साहित्य का शायद ही कोई ऐसा अंश अछूता रह पाता है, जिसकी छाप आयोजित महोत्सवों में खुलकर सामने नहीं आती। इसके अलावा इसकी जद में सांस्कृतिक, सामाजिक और शैक्षिक चेतना का भी वास होता है, जिसे आमजन बड़े चाव के साथ प्रत्यक्ष

या परोक्ष रूप से ग्रहण करते हैं।

आयोजित महोत्सवों में भागीदारी निभाने वाला आम आदमी का मानस तनाव मुक्त हो नई स्फूर्ति से लबरेज हो जाता है। लोकमानस में नए उत्साह, नई ललक और जीजीविषा का ऐसा आलम छाता है कि वह ऊर्जावान बन नया काम करने के लिए ललायित हो उठता है। इतना ही नहीं, उत्सव-महोत्सव हमारे समाज के सामूहिक जीवन-पद्धति, सांस्कृतिक मूल्यों, आपसी विश्वास और लोकास्था को

प्रदर्शित करते हुए उल्लासपूर्ण मनोरंजन का सुअवसर भी प्रदान करते हैं।

बिहार में बड़े पैमाने पर मनाये जानेवाले मुख्य महोत्सवों में राजगीर, बुद्ध, बाल्मीकि, तपोवन, वाणावर, सोनपुर, विक्रमशिला, मंदार, विश्वामित्र, पहाड़पुत्र दशरथ मांझी, वीर कुँवर सिंह महोत्सव, शेरशाहसूरी, नंदनगढ़, आदि आयोजन होते रहे हैं, जो अपनी सांस्कृतिक पहचान के साथ-साथ अपनी कलात्मकता को भी दर्शाने में कामयाब रहे हैं। इसमें कुछ सरकारी तो कुछ गैर-सरकारी स्तर पर भी मनाये जाते हैं। महोत्सवों में क्षेत्रीय शासन- प्रशासन की भगीदारी सहित स्थानीय लोगों तथा चोटी के कलाकारों द्वारा सक्रिय भागीदारी की जाती है। इन महोत्सवों में आमजन शिरकत कर आनंद एवं शांति-सुकून विशेषतया महसूस करते हैं। बिहार में मनाये जाने वाले सभी उत्सव-महोत्सव ऐतिहासिक एवं प्रेरणास्पद हैं, जो राज्य के विकास में एक नई कड़ी जोड़ने के लिए प्रेरित करते हैं।●

(लेखक कवि एवं रचनाकार हैं।)